विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१५ जनवरी—१९९६ अंक—१

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा-८४१ ३०१ (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१३१. श्री जी. के. दीक्षित, बरोदा (गुजरात)
१३२. श्री सत्य प्रकाश लाल, वाराणसी (उ. प्र.)
१३३. श्री पूनम चन्द्र जैन— लुमडिंग (आसाम)
१३४. श्री राम आसरा वासुदेव— लुमडिंग (आसाम)
१३५. नार्थ कछार टिम्बर प्रोडक्ट्स-मंडेरदिशा (आ)
१३६. श्री ओम प्रकाश अग्रवाल —लंका (आसाम)
१३७. श्री महेश गुरुवारा—लुमडिंग (आसाम)
१३८. श्री भोलानाथ उपाध्याय—लुमडिंग (आसाम)
१३९. श्री अमुभाई पटेल—बड़ौदा (गुजरात)
१४०. श्री रामभगत खेमका—मद्रास
१४१. श्री रूपाराम—जोधपुर (राजस्थान)
१४२, महावीर वाल वाचनालय-चन्दावलनगर (राज.)
१४३. श्री कृष्ण मलहोत्रा—नई दिल्ली
१४४. श्री गुलशन चावला— दिल्ली
१४५. श्री आर० के० ग्रोवर—नई दिल्ली
१४६. श्री राकेश रेल्हन—नई दिल्ली
१४७. श्री जयप्रकाश सिंह—कलकत्ता
१४८. श्री गंगाधर मिश्र एन० सी० हिल्स
१४९. श्री वी० वी० शेरपा—लुमडिंग (आसाम)
१५०. श्री शंकर लाल अगरवाल—नगांव (आसाम)
१५१. श्री रामगोपाल खेमका—कलकत्ता
१५२. श्रीमती शान्ति देवी—इन्दौर (म० प्र०)
१५३. श्री जगदीश बिहारी – जयपुर (राजस्थान)
१५४. डॉ० गोविन्द शर्मा—काठमांडू (नेपाल)
१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६, सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—राजकोट (गुजरा
१५७. श्रीमती गिरजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५८. श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, नई दिल्ल
१५९. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ— देवघर (बिहार
१६०. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा (म०प्र०
१६१. श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म०प्र०
१६२. श्री डी०एन० थानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६३. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०
१६४. डा० (श्रीमती) रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर (उ०प्र
१६५. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ल
१६६. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा का एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१५ जनवरी—१९९६ अंक—१

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(विहार)
फोन : ०६१५२-४२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य —	५०० रु०
वार्षिक —	४० रु०
रजिस्टर्ड डाक से —	५५ रु०
एक प्रति —	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्री रामकृष्ण ने कहा है

(१)

तान्त्रिक शवसाधना में साधक को शव की छाती पर बैठकर साधना करनी होती है। उक्त शवसाधना करते समय साधक को पास ही में चना चवेना और मदिरा लेकर बैठना पड़ता है। साधना के समय बीच में यदि शव जागकर मुँह फाड़े तो उस समय उसके मुँह में कुछ चना और मदिरा देना पड़ता है। ऐसा करने से वह फिर स्थिर हो जाता है, अन्यथा वह साधक को डराकर साधना में विघ्न उत्पन्न करता है। इसी तरह तुम्हें संसार में रहकर साधना करनी हो तो पहले संसार की जरूरी मांगों की पूर्ति का प्रबन्ध कर लो, अन्यथा संसार रूपी शव तुम्हारी साधना में विघ्न डालेगा।

(२)

संन्यासी यदि स्वयं निर्लिप्त हो, जितेन्द्रिय हों, तो भी लोगों के सामने आदर्श रखने के लिए उसे कामिनी कांचन का सर्वतोभावेन त्याग करना चाहिए। संन्यासी का सोलहों आना त्याग देखकर ही लोगों को साहस होगा, तभी वे कामिनी-कांचन को त्यागने का प्रयत्न करेंगे। भला, त्याग की शिक्षा अगर संन्यासी न दे तो दे कौन ?

(३)

जो हमेशा दूसरों के गुण-दोषों की चर्चा करते रहता है, वह अपना समय फालतू बरबाद करता है, क्योंकि परचर्चा करने से न तो आत्मचर्चा हो पाती है और न परमात्म-चर्चा ही।

विवेकानन्द-वन्दना

—डॉ० केदारनाथ लाभ

भक्तिमती भुवनेश्वरी, विश्वनाथ गुणधाम ।
इनके तनय नरेन्द्र को, बारम्बार प्रणाम ॥
मूर्त महेश्वर ताप-हर, वीरेश्वर सुखकन्द ।
शुद्ध बुद्ध आनन्दन, जयतु विवेकानन्द ॥

जय यतिराज स्वराज-बिहारी। जय विवेक-वन विचरणहारी ॥
ध्यानसिद्ध योगेश्वर योगी। जय सच्चिदानन्द - रस भोगी ॥
अनासक्त अनिकेत विरागी। दीन - दरिद्र - दलित - अनुरागी ॥
तापित - शापित जन के त्राता। सेवा - प्रेम - मंत्र - उद्गाता ॥
अन्तर भक्ति, दृष्टि विज्ञानी। कर्मवीर वाणी - कल्याणी ॥
वज्र कठोर प्रचण्ड शक्तिधर। सतत कमल - कोमल उर-अन्तर ॥
जय गन्दर्भ-कंठ युग नायक। जय जय अभय मुक्ति-वरदायक ॥
रामकृष्ण पद - कंज भ्रमर-मन। वरदा माँ सारदा हृदय - धन ॥

तुम विशाल वट वृक्ष हो, यह भव - सिन्धु अपार ।
आये धर नर-देह तुम, करने जन को पार ॥

भुज विशाल युग आयत लोचन। रूप अनूप सकल दुःख-मोचन ॥
चारु चन्द्र - मुख सुख संचारी। पाप ताप भव - आतप हारी ॥
गिरि वन नगर ग्राम पथचारी। गैरिक वसन कमण्डलुधारी ॥
युगाचार्य गुरु मुक्ति - प्रदाता। अभिनव मानव - धर्म विधाता ॥
विश्वधर्म संसद के नायक। जय अद्वैत सुधाम्बु प्रदायक ॥
तुम पूरब पश्चिम के संगम। सचल धर्म, भू पर शिव जंगम ॥
घनीभूत भारत तुम स्वामी। तपःपूत मति अमल अकामी ॥
बुद्ध व्यास शुकदेव समाहित। तुम में शंकर ज्ञान प्रवाहित ॥

तुम अनन्त के सेतु प्रभु, तुम कर्मठ वेदान्त ।
कोटि-कोटि जन दीन के, स्वामि सखा तुम कान्त ॥
तुम करुणा मन्दाकिनी, ताप - तप्त में तीर ।
जनम - जनम की प्रभु हरो, भव वाधा मम पीर ॥

पथ हैं—विवेकानन्द

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

'विवेक शिखा' इस अंक के साथ अपने पन्द्रहवें वर्ष में प्रवेश कर रही है। यह एकमात्र हमारे परमाराध्य भगवान् श्रीरामकृष्ण, जगज्जननी श्रीमाँ सारदा देवी और विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्द की इस पत्रिका पर निरन्तर बरसनेवाली उनकी अशेष अहेतु की कृपा का जीवन्त-ज्वलन्त प्रमाण है। हम निश्चय ही इस बीच अनेक बाधा-विपत्तियों से गुजरे हैं। लेकिन जब कभी निराशा की घटा घिरने लगी, हमारे पावन त्रिदेवों की कृपा-किरण ने उसे विच्छिन्न कर दिया। 'जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करहि सब कोई॥' इस उक्ति की सत्यता चरितार्थ करने के लिए रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के वंदनीय साधु-महात्माओं और श्रीरामकृष्ण की गृही सन्तानों ने अपने सहयोग के हाथ बढ़ाकर बराबर हमारी मुश्किलें आसान कर हमारा मनोबल बढ़ाया है। और इसमें हिन्दी भाषी क्षेत्रों अपेक्षा अहिन्दी भाषी क्षेत्र के स्त्री-पुरुष भक्तों और साधु-सन्तों ने अधिक सहयोग किया है। मैं इन सबके प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ और अपने त्रिदेवों से प्रार्थना करता हूँ कि उनकी अशेष कृपा इन सब पर बरसती रहे। साथ ही, मैं आप सब से निवेदन करता हूँ कि हमारी त्रुटियों, कमियों और अनियमितताओं पर ध्यान न देकर, हमारी सीमाओं और समस्याओं के प्रति सहानुभूति रखते हुए अपना सहयोग देते रहने की कृपा करें।

'मित्रो, आज हम एक ऐसे चौराहे पर खड़े हैं, जहाँ से हम किस पथ पर आगे बढ़ें, यह समझ में नहीं आता। हम पथभ्रान्त पथिक की भाँति किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये हैं। हम दिशाहारा हो गये हैं। राष्ट्रीय जीवन के कर्णधार एक से बढ़कर एक महाघोटालाओं के महाजाल में फँस रहे हैं। लोक कल्याणकारी योजनाओं में लगाये जाने वाले सौ पैसों में मात्र पन्द्रह पैसे जनता तक पहुँच जाते हैं। और इस भ्रष्टाचार-कदाचार के जीवन-दर्शन के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। किसी कवि ने लिखा है—

ऊपर ही ऊपर पी जाते, जो पीनेवाले हैं।
कहते हैं, ऐसे ही जीते, जो जीनेवाले हैं।

विदेशों से वायुयानों पर लद-लदकर भयानक अस्त्र-शस्त्र चुपचाप हमारे देश में गिरा दिये जाते हैं और हमारे सुरक्षाकर्मियों को इसका पता तक नहीं चलता। राज्य सरकारों के निर्देश में पुलिस हमारी माताओं-बहनों का शीलहरण करती हैं और किसी न्यायालय में फैसले के बाद ही मंत्री जनता से क्षमा-याचनाकर अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री मान लेते हैं। तिलक-दहेज के नाम पर स्त्रियों को जीवित जला दिया जाता है। धर्म-रक्षा के नाम पर हम आपस में एक-दूसरे को गर्दन काट देने में नहीं हिचकते। दूर-संचार माध्यमों टी० वी०, जी० टी० वी० आदि के द्वारा जो दृश्य दिखाये जा रहे हैं उनसे हमारे पारिवारिक जीवन पर असर पड़ा है। हमारे बच्चे असंचयित हो रहे हैं। परिवार टूट रहा है। अशिष्टता बढ़ रही है। भोग लिप्सा और स्वार्थपरायणता के हम शिकार हो रहे हैं। चारों ओर एक अन्धकार दिखने लगता है। क्या हो गया है इस देवभूमि भारत को? इस महान्धकार से निकलने का पथ क्या है? ऐसे प्रश्न अक्सर अनेक मित्र पूछा करते हैं।

पथ है। हमारे सामने ही पथ है। हम उस पथ को अनदेखा किये चौराहे पर ठिठके खड़े हैं। पथ पुकार रहा है और हम बहरे बने खड़े हैं। पथ विवेकानन्द हैं —स्वामी विवेकानन्द।

हमारे तमाम अनर्थों का, पतन का, पथभ्रान्तता का एकमात्र कारण है, हम में मनुष्यत्व का अभाव। और हमारे सभी रोगों की एक ही दवा है—मनुष्यता का गठन। हम भोग में आकंठ डूबते जा रहे हैं, क्योंकि हममें मनुष्यता नहीं रह गयी है। हम उपभोक्तावादी—अपसंस्कृति के शिकार हो गये हैं, क्योंकि हम मनुष्य नहीं हैं। स्वामीजी के प्रायः पाँच हजार पृष्ठों के व्याख्याओं और लेखों का यदि कोई एक सार-संक्षेप है तो वह है—मनुष्य का निर्माण करना। उन्होंने स्वयं ही कहा है—मनुष्य निर्माण करना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है।

यदि हमारी केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकारों के अधीन कार्यरत प्रशासनिक सेवा पदाधिकारियों, राजनीतिक, शैक्षणिक, सामुदायिक योजनाओं और औद्योगिक क्षेत्रों में कार्यरत बाबूओं, कर्मचारियों तथा किरानियों के द्वारा स्वामी विवेकानन्द द्वारा निर्दिष्ट राष्ट्र-प्रेम और समर्पण के भावों का शतांश भी प्रेरणा स्वरूप ग्रहण कर लिया जाए तो हमारा देश अविलम्ब एक नयी क्रियाशक्ति से भरकर गतिशील हो जाएगा। राष्ट्रीय विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन की गति में तेजी आ जायगी। पंचवर्षीय योजनाओं में गतिशीलता योजनाओं से नहीं आती बल्कि उन योजनाओं को क्रियान्वित करने वाले लोगों से आती है। सचिवालयों की संचिकाएँ स्थिर, गतिहीन होती हैं, किन्तु इन संचिकाओं को संचालित करनेवाले बाबुओं को जड़, मृत और गतिहीन नहीं होना चाहिए। उन्हें जीवंत, राष्ट्रप्रेम की भावना से उद्दीप्त और संकीर्ण तथा क्षुद्र स्वार्थ से ऊपर उठा हुआ चैतन्य पुरुष होना चाहिए।

हम देखते हैं कि बात-बात में, हर मामले में सरकारें जाँच समितियों का गठन कर रही हैं, फिर भी योजनाओं की प्रगति संतोषजनक नहीं है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग शिक्षकों के लिए पैसे आवंटित करता है। राज्य सरकारें उन्हें दूसरे मद में ले जाती हैं। समय पर शिक्षकों को वेतन नहीं मिलता। अवकाश प्राप्त शिक्षकों को बकाया वेतन राशि का भुगतान नहीं होता। पेंशन और ग्रेच्युइटी के पैसे नहीं मिलते। संचिकाएँ जहाँ-तहाँ दबा दी जाती हैं। शिक्षक न्यायालय के चक्कर काटते हैं। सच पूछा जाए तो आज भारत को न्यायालय ही संचालित कर रहा है। भारत जितने मुकदमे किसी सभ्य देश में आज नहीं लड़े जाते। भारत एक प्रकार से मुकदमों का देश होकर रह गया है। इन सब के मूल में एक ही बात है। हमारे पास सही-सही मनुष्य का अभाव है। हमारे यहाँ तंत्र हैं, संस्थाएँ और संस्थान हैं किन्तु सर्वत्र मनुष्य—शिक्षित, प्रशिक्षित, राष्ट्रानुराग की अग्नि से ज्वाज्वल्यमान, त्याग और सेवा भाव के अग्नि मंत्र से दीक्षित—मनुष्य चाहिए।

स्वामी ने अपने देशवासियों से इसी मनुष्य बनने की अपेक्षा की थी। उन्होंने मनुष्य की महिमा बताते हुए उद्घोष किया था—"एक बात पर विचार करके देखिए, मनुष्य नियमों को बनाता है या नियम मनुष्य को बनाते हैं? मनुष्य रुपया पैदा करता है या रुपया मनुष्यों को पैदा करता है? ......मेरे मित्रो, पहले मनुष्य बनिए, तब आप देखेंगे कि वे सब बाकी चीजें स्वयं आपका अनुसरण करेंगी। परस्पर के घृणित द्वेषभाव को छोड़िए ......और सदुद्देश्य, सदुपाय, सत्साहस एवं सद्भाव का अवलम्बन कीजिए। आपने मनुष्य योनि में जन्म लिया है तो अपनी कीर्ति यहीं छोड़ जाइए।

मद्रास के विक्टोरिया हॉल में दिये गये अपने प्रसिद्ध व्याख्यान 'मेरी क्रान्तिकारी योजना' में स्वामीजी ने इसी भाव को दुहराते हुए जोरदार शब्दों में कहा—'मनुष्य, केवल मनुष्य भर चाहिए।

बाकी सब कुछ अपने आप हो जाएगा। आवश्यकता है वीर्यवान, तेजस्वी, श्रद्धासम्पन्न और दृढ़ विश्वासी निष्कपट नवयुवकों की। ऐसे सौ मिल जाएँ, तो संसार का कायाकल्प हो जाए। इच्छाशक्ति संसार में सब से अधिक बलवती है। उसके सामने दुनिया की कोई चीज नहीं ठहर सकती।"

मनुष्य बनने के लिए मानव निर्माणकारी शिक्षा की परम आवश्यकता है। आज हमारी शिक्षा-व्यवस्था हमें विचारों, दूसरों के मतों के गट्ठर लाद देती है। वह हमें दृढ़ धारणा, विश्वास और सम्प्रत्यय नहीं देती। महत विश्वास ही महत कार्यों की जननी है। इसलिए स्वामीजी ने मानव निर्माण-कारी, चरित्र निर्माणकारी, विभिन्न विचारों को आत्मसात् करनेवाली, पचा लेनेवाली शिक्षा की महत्ता पर जोर दिया है। हमें इसे अपनाना ही होगा।

इस भौतिकवादी चकाचौंध में हम अपनी मूल्य प्रकृति, धर्म भाव को तेजी से छोड़ते चले जा रहे हैं। मित्रो, धर्म भारतवर्ष की मूल प्रकृति है, इसका मेरुदण्ड है, घर्मस्थल है। धर्म को त्यागकर हम जी नहीं सकते। अपनी प्रथम विदेश यात्रा के उपरान्त विश्वविजेता के रूप में स्वदेश लौटने पर, भारत की मिट्टी पर पहले-पहल पैर रखने पर रामनाद में अपने अभिनन्दन का उत्तर देते हुए स्वामीजी ने हमें इसी तथ्य की ओर ध्यान दिलाया था—"जिस प्रकार यदि किसी आदमी के मर्मस्थान में कोई आघात न लगे अर्थात् यदि उसका मर्मस्थान दुरुस्त रहे, तो दूसरे अंगों में कितनी ही चोट लगने पर भी उसे सांघातिक न कहेंगे, उससे वह मरेगा नहीं, उसी प्रकार जब तक हमारी जाति का मर्मस्थान सुरक्षित है उसके विनाश की कोई आशंका नहीं हो सकती। अतः भली भाँति स्मरण रखिए, यदि आप धर्म को छोड़कर पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता के पीछे दौड़िएगा तो आपका तीन ही पीढ़ियों में अस्तित्व लोप निश्चित है। क्योंकि इस प्रकार राष्ट्र का मेरुदण्ड ही टूट जाएगा—जिस भित्ति के ऊपर यह राष्ट्रीय विशाल भवन खड़ा है, वही नष्ट हो जायगा, फिर तो परिणाम सर्वनाश होगा ही। अतएव, हे भाइयो, हमारी राष्ट्रीय उन्नति का यही मार्ग है कि हम लोगों ने अपने पुरखों से उत्तराधिकार स्वरूप जो अमूल्य सम्पत्ति पायी है, उसे प्राणपण से सुरक्षित रखना ही अपना प्रथम और प्रधान कर्तव्य समझें।"

जातीय द्वेष से हमारा देश झुलस रहा है। हम अपने ही देशवासियों से स्वार्थवश प्रेम नहीं करते। त्याग, सेवा और प्रेम ये ही हमारे राष्ट्रीय आदर्श हैं। त्याग-भाव के बिना सेवा नहीं हो सकती और प्रेम विहीन सेवा मात्र औपचारिकता होती है। निश्छल प्रेम से सेवा के सुमन में सुगंध भर जाती है! स्वामीजी कहते हैं—और किसी बात की आवश्यकता नहीं. आवश्यकता है केवल प्रेम, अकपटता और धैर्य की। जीवन का अर्थ है वृद्धि, अर्थात् विस्तार, यानी प्रेम है। इसलिए प्रेम ही जीवन है ·····और स्वार्थपरता ही मृत्यु है। ···· परोपकार ही जीवन है, परोपकार न करना ही मृत्यु है। ·····ऐ बच्चो, जिसमें प्रेम नहीं है वह तो मृतक है। ऐ बच्चो, सबके लिए तुम्हारे दिल में दर्द हो—गरीब, मूर्ख: पददलित मनुष्यों के दुःख का तुम अनुभव करो, संवेदना से तुम्हारे हृदय की क्रिया रुक जाय, मस्तिष्क चकराने लगे, तुम्हें ऐसा प्रतीत हो कि हम पागल तो नहीं बन रहे हैं फिर ईश्वर के चरणों में अपना दिल खोल दो, तभी शक्ति, सहायता और अदम्य उत्साह तुम्हें मिल जायेगा।

हमें अपने देश के लिए बिना इसके दोषों को कोसे हुए अपनी बलि देनी होगी। स्वामीजी का कितना अच्छा, प्रेरक और सुन्दर संदेश है यह—'ऐ मेरे स्वदेशवासियों, मेरे मित्रो, मेरे बच्चो, राष्ट्रीय

जीवन रूपी यह जहाज लाखों लोगों को जीवन रूपी समुद्र के पार करता रहा है।……पर आज शायद तुम्हारे ही दोष से इस पोत में कुछ खराबी हो गयी है, इसमें एक-दो छेद हो गये हैं तो क्या तुम इसे कोसोगे ? संसार में जिसने तुम्हारा सबसे अधिक उपकार किया है, उसके विरुद्ध खड़े होकर उस पर गाली बरसाना क्या तुम्हारे लिए उचित है ? हम तो उसकी सन्तान हैं। आओ चलें, उन छेदों को बन्द कर दें उसके लिए हँसते-हँसते अपने हृदय का रक्त बहा दें। और यदि हम ऐसा न कर सकें तो हमें मर जाना ही उचित है। हम अपना भेजा निकालकर उसकी डाट बनाएँगे और जहाज के उन छेदों में भर देंगे। पर उसकी कभी भर्त्सना न करें।"

मित्रो, यह हैं विवेकानन्द—मार्ग हमारी राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान का। आइए हम इस मार्ग पर चलें, अपने राष्ट्र, गौरवशाली राष्ट्र के पुनरुद्धार के लिए हमारे एकमात्र पथ हैं--विवेकानन्द, स्वामी विवेकानन्द।

स्वामी विवेकानन्द और आधुनिक युग

प्रव्राजिका श्रद्धाप्राणा

आज की चर्चा का विषय है स्वामीजी और आधुनिक युग। प्रश्न यह उठता है कि आधुनिक युग में स्वामीजी के आविर्भाव का क्या कोई विशेष प्रयोजन या significance है ? या कोई प्रासंगिकता है ? याद आती है 12 जनवरी 1963 ईसवी को देशप्रिय पार्क में आयोजित विवेकानन्द शताब्दी उत्सव की बात। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन ने अपने स्वागत भाषण में कहा था, After Buddha came the Buddha Age, after Vivekananda we have entered the Vivekananda Age अब प्रश्न यह है कि विवेकानन्द-युग आरम्भ कब हुआ और उस युग का अन्त कब होगा ? हम शीघ्र ही इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश करने जा रहे हैं। विवेकानन्द युग क्या इसी के भीतर सीमाबद्ध है ? इस प्रश्न का उत्तर देना इस समय सम्भव नहीं है। उनके समान लोकोत्तर पुरुष युगाचार्य जिन्हें कहा जाता है उन को क्या किसी देशकाल की सीमा में आबद्ध किया जा सकता है ? उनका संदेश किसी विशेष जाति के लिए भी नहीं है। हम केवल इतना ही जानते हैं कि वह शाश्वत सन्देश जब भी प्रयोजन होगा मनुष्य को प्रेरणा देगा, जैसे अब तक देता आया है।

हम स्वामीजी के शिकागो धर्महासभा में योगदान की शताब्दी मना रहे हैं। मैं इसी के साथ 1899 में उनकी द्वितीय अमेरिका यात्रा को भी शामिल कर रही हैं। उनकी इन दोनों अमेरिका यात्राओं की तुलना करने पर हम देखेंगे कि अपनी पहली यात्रा में वे भारतवर्ष की श्रेष्ठ सम्पत्ति वेदान्त दर्शन का प्रचार प्रसार करना चाहते थे पर किसके सामने ? जहाँ सब धर्मों के श्रेष्ठ प्रतिनिधि एक ही मंच पर उपविष्ट थे।

एक प्रश्न फिर से करती हूँ। वे अमेरिका क्यों गए ? स्वामीजी के घोषणानुसार "भारत के लिए अर्थ संग्रह करने जा रहे हैं।" स्वामीजी की जीवनी का अवलोकन करने पर हम देखते हैं कि यह घोषणा मात्र एक उपलक्ष्य था। अन्यथा अमेरिका जाने के पूर्व वे हरि महाराज से यह क्यों कहते कि शिकागो धर्म महासभा उन्हीं के लिए प्रस्तुत हो रही है ? भगवान बुद्ध के जन्म के प्रायः दो हजार पाँच सौ वर्ष पश्चात् सन् 1893 ईसवी में स्वामीजी को यह कहते सुना गया।

"I have a message to the West just as Buddha had a message to the East." Industry. Arts, Science, Technology आदि हर क्षेत्र में तेजी से उन्नति करता हुआ, अभ्युदय के द्वार पर खड़ा अमेरिका आधुनिक युग में प्रवेश करता था। वास्तव में Columbian Exposition एक भव्य प्रदर्शनी थी। अपने देश और जाति का जो वे गौरवशाली था उसे अमेरिकावासियों ने इस मेले में पृथ्वी के समस्त देशों के सामने पेश किया था। यूरोपीय सभ्यता में क्रमशः इतने दिनों तक जो शीर्ष स्थान पर थे - जैसे हम स्पेन या इटली, कभी फ्रांस, जर्मनी या इंगलैंड, आज मानो सब अमेरिका के सामने फीके पड़ गए। जो देश उन्नति के शिखर पर हो, जहाँ सुख एवं समृद्धि झलक रही हो वह स्वामीजी जैसे एक अकिंचन संन्यासी के जाने का क्या प्रयोग था ? भला श्री रामकृष्ण ने क्यों उन्हें स्पष्ट रूप से अमेरिका जाने का संकेत किया ? क्या यह आधुनिक युग की विजय व्याधि की ओर ध्यान दिलाना था ? भौतिक रूप से जिनके पास सब कुछ था उन लोगों के पास अपना प्रतिनिधि क्यों भेजा ? स्वामीजी का प्रेरणा स्रोत थे श्रीरामकृष्ण। भारत की भौतिक दरिद्रता से अमेरिका की आध्यात्मिक दरिद्रता भी भीषणतम थी। फलस्वरूप, जो मनुष्य जन्म श्रेष्ठ है उसके महिमामय

उद्देश्य को धन की गरिमा व्यर्थ कर रही थी। भौतिक ऐश्वर्य के गलीचे पर खड़ा स्वर्णमुकुटधारी अमेरिका इतना दीन-हीन क्यों भोग के अतुलनीय स्रोत में बहते हुए भी यह अन्तर्द्वन्द्व की सिसकियाँ क्यों भर रहा था ? इस युग सन्धि के क्षण में भारतात्मा विवेकानन्द का अमेरिका में प्रवेश होना है। पश्चिम के अन्तःकरण के हाहाकार को तय करने के लिए श्रीरामकृष्ण जी तो विवेकानन्द को अमेरिका भेज दिया पर अमेरिका इस विषय में सचेत न था कि नहीं इसमें सन्देह है। स्वामीजी का पहला संदेश था :—तुम नित्य शुद्ध, बुद्ध आत्मा हो। तुम्हें सबसे पहले सचेतन होना होगा। मुक्त होकर भी अपने आपको बुद्ध क्यों समझते हो ? स्वामीजी उनके समक्ष क्या चाहते थे awareness of bondage बंधन के सम्बन्ध में अचेतनता। सिस्टर क्रिस्टिन ने लिखा है। आध्यात्मिकता सम्बन्धी हमारी भ्रांत धारणा को स्वामीजी ने दूर किया था तब तक हम समझते थे—आध्यात्मिकता का अर्थ है—Inertia, dullness, weakness, स्वामीजो ने समझाया आध्यात्मिकता का अर्थ है—life, power joy, fire, glow. enthusiasm, strangth and all beautiful and positive things. इसका अर्थ है—Spirit is life अर्थात् वह शक्ति है living energy श्रीमती हन्सबरी की स्वामीजी ने ईसामसीह की तरह कहा था 'My words are spirit and life. अतः तुम इस तत्त्व को समझ लो कि तुम बद्ध नहीं मुक्त हो। इस बात को समझ कर तुम सचेत होकर खड़े हो जाओ, इसी का नाम है Spirituality आध्यात्मिकता।

Spirituality या आध्यात्मिकता यदि हमें शक्ति न दे तो हमें समझना होगा, हम Spirit या भूत की उपासना कर रहे हैं, आत्मा की नहीं। हम जानते हैं कि श्रीरामकृष्ण के किसी एक शिष्य ने जब उन्हें भूत उतारने की बात कही तो वे उसे झिड़कते हुए बोले, ''तू भूत को पुकारेगा, न भगवान को ? अमेरिका में पहुँचकर पहले स्वामीजी ने नियमित कक्षाएँ लेकर आसन, प्राणायाम इत्यादि द्वारा राजयोग की शिक्षा दी। बाद में उन्होंने वेदान्त और ज्ञानयोग विषय पर भी कक्षा ली। फलस्वरूप हमें दर्शन के दो उत्कृष्ट ग्रन्थ मिले। दर्शनशास्त्र तो पहले से ही थे, किन्तु स्वामीजो ने दर्शन को आधुनिक युग के लिए उपयोगी करते हुए पाश्चात्य देश के सम्मुख रखा, उसे इस तरह समझाया, जिससे मनुष्य उसे सहज रूप से धारण कर सके। आत्मा के हाहाकार से पीड़ित अमेरिकावासियों के समय उनका आवर्भाव "अवरोध वैद्य" के रूप में हुआ। हमने सिस्टर राणा को कहते सुना है सब कुछ होते हुए भी एक तीव्र अभावबोध उस समय अमेरिकावासियों में व्याप्त था। स्वामीजी की वाणी वे कितना ग्रहण कर पाए थे, यह अभी भी स्पष्ट नहीं है और यह सब दो चार दिन में जानना भी संभव नहीं है। यह योग का अभ्यास कर रहे अमेरिकन शिष्य ने स्वामीजी से पूछा, कितने दिन में मेरा realization होगा ? स्वामी जी बोले, हो सकता है इसी जीवन में या कुछ और जीवन लग सकते हैं। लेकिन विकास होगा ही, उकेगा नहीं, यदि राजयोग की शिक्षा का अनुसरण करो। इसी bondage (बंधन) के विरुद्ध खड़े होने को उन्होंने evolution कहा है। अमेरिका में जनसाधारण के सामने वे बोल सके थे—अच्छी तरह समझ लो शास्त्र, उपासनालय या विग्रह किसी में धर्म नहीं है। साहस के साथ उन्होंने इसी भयंकर वाणी का उच्चारण किया—down with the scriptures, down with the priest, down with the churches, down with the Gods.

तुम स्वयं वही supreme soul हो। तो फिर धर्म को कहाँ खोज पाएँगे ? हर समय बोलो मैं सत्य का वही रूप देखूँगा, जो किसी रूप में आवृत

न हो। तुम लोग भगवान को एक मुखौटा पहनाकर रखते हो। तुम्हारे लिये भगवान की चिन्ता 'All beautiful' है, भूल क्यों जाते हो कि 'He is all terrible also' है. तुम कहते हो—'God is good' भूलते क्यों हो कि 'He is also all evil' तो फिर उनका सुन्दर रूप जैसे देखते हो, वैसे ही आँख खोलकर उनका भीषण रूप भी देखो। इस बात को दूसरी बार जाकर उन्हें स्पष्ट रूप से कहने लगे। जिस ईश्वर को हम सम्पूर्ण all perfect) सोचते हैं, वे कैसे एक अपूर्ण जगत् (imperfect world) के सृष्टिकर्ता (Creater हो सकते हैं? हम एक बार भी नहीं सोचते कि ईसा बुद्ध इत्यादि अवतारों ने हमारा जितना सर्वनाश किया है, उतना और किसी ने नहीं किया है। कारण, बात तो थी कि जब वे आएँगे तो उनका भाव ग्रहण करके हम भी ईसा और बुद्ध हो जाएँगे। लेकिन हमने केवल अनुकरण किया, अनुसरण नहीं किया। सभी धर्म यह स्वीकार करते हैं कि यदि निष्कपट भाव से, शुद्ध भाव से अनुसरण किया जाए, तो ईसत्व बुद्धत्व हमारे भीतर ही विकसित होगा। बौद्ध धर्म कहता है—

"आत्मदीपो भव" तुम स्वयं अपने लिए आलोकवर्तिका बनो। हमारे देश के शास्त्र कहते हैं 'आत्मलोत्रिद्धि"—स्वयं को जानो, यही धर्म की पहली बात है। कैसे जानेंगे? एक ही उत्तर—'Blessed are the pure in heart for they shall see God.' हमारे अन्तर की शुद्धता हमारे हृदय में भगवान के ज्योतिर्मय रूप को प्रकाशित करेगी। पाश्चात्य में स्वामीजी ने प्रचार किया तुम्हारे Ten Commandments में से इसे सभी धर्मों ने स्वीकार किया है—Purity (पवित्रता) और Truth (सत्य के ऊपर ही सब धर्म टिके हैं। तुम्हारे पास Practical raligion का ही रास्ता है Charity बताना चाहते हो, तुम कितने धार्मिक हो। कितने million dollars भेज कर कितनों को अपने धर्म में शामिल कर उनके salvation की व्यवस्था किए हो। लेकिन प्रत्येक धर्म के व्यक्तियों की अपनी मुक्ति की व्यवस्था स्वयं करनी पड़ती है। दूसरे कभी नहीं कर सकेंगे। अहंकारवश हम सोचते हैं, अर्थदान करके सभी के दुःखों को, अभावों को दूर करेंगे। लाख-लाख डॉलर दान करके भी क्या अभाव मिटा सकोगे? जगत को क्या बदल सकोगे? जगत् के मनुष्य यदि न बदले तो जगत् कैसे बदलेगा? इसी तरह की बात कितने वर्ष पूर्व दक्षिणेश्वर के छोटे से घर में बैठे ठाकुर (श्रीरामकृष्ण देव) को बोलते सुना है—जगत्-जगत् ही रहेगा, कुत्ते की पूँछ सीधी नहीं की जा सकती। तो फिर प्रश्न कर सकते हैं—तो क्या परोपकार का कोई प्रयत्न न करें? इतने दिनों तक स्वामीजी को जो बोलते सुना—दूसरों के लिए जिस किसी ने कुछ किया है, उसी ने धर्म का काम किया है, जिसने स्वयं के लिए किया है, उसका कुछ नहीं होता। परोपकार ही धर्म है। अन्यत्र स्वामीजी विपरीत प्रश्न करते हैं—परोपकार में ही क्या सब धर्म निहित है? ऐसा नहीं है। तुम सब दूसरों के लिए कुछ करने का प्रयत्न करते हो, तो उससे स्वयं का भला करते हो, तुम्हीं अच्छे होते जाते हो। जगत् परिवर्तित नहीं होता। तुम्हारे मन में यह द्वन्द आना स्वाभाविक है कि मैं क्यों परोपकार धर्म का अनुसरण करूँ? करेंगे अपने स्वार्थ के लिए अन्तर की प्रेरणा से। Workship not as flesh and blood worship the spirit as spirit. अर्थात् जीव समझकर नहीं, शिव समझकर पूजा। मनुष्य के भीतर आत्मा है. मेरे भीतर जो ईश्वर है, वहीं तुम्हारे भीतर भी है। जिस देवता की आराधना अपने भीतर करते हैं, ध्यान धारणा करना अच्छा लगता है. वही देवता सभी के भीतर विराजमान हैं। यह विश्वास, यह भाव सभी जीवों के भीतर शिव को देखने की अन्तरदृष्टि देगा। लेकिन यह एक दिन में होने वाली

बात नहीं है। जीव में शिव का प्रकाश देखना और दिखाना स्वामीजी का मिशन था, इससे यह न समझ लें कि वे तथाकथित massionary थे। उन्होंने warning दी है आध्यात्मिक संस्थानों को missionary out look लेकर काम करने से, आध्यात्मिक क्षति के बिना उसे नहीं किया जा सकता। उससे secuiarisation of religion होने की संभावना से बचा नहीं जा सकता, हमने प्राचीन संन्यासियों को कई बार कहते सुना है पहले रामकृष्ण उसके बाद मिशन। रामकृष्ण आगे हैं, इसीलिए मिशन का मूल्य है। अब देखेंगे रामकृष्ण माने क्या? उनका चित्र? मन्दिर? पूजा? मंत्र? मिशन के आगे जब रामकृष्ण का उच्चारण करते हैं तब एक अभूतपूर्व साधनलब्ध व्यक्तित्व के द्वारा 'प्रतिफलित, उद्भासित वार्ता को ही समझना होगा। यदि उनकी यह वार्ता दूसरों में ज्ञानालोक न ला सके तो मिशन व्यर्थ होगा। स्वामीजी स्वयं संघ प्रतिष्ठा कर बोले थे, यह एक Purity drilling machine की तरह है। इस संघ को केन्द्र करके इसके आदर्श को जो ग्रहण करेगा, अन्तरंग या बहिरंग रूप से साधारण भक्त या अनुगामी के रूप में जिस रूप में भी इसके भीतर प्रवेश करेगा, वह इसके द्वारा पवित्र होगा अर्थात् उसकी चित्त-शुद्धि होगी। यदि ऐसा नहीं होता तो मिशन व्यर्थ होगा। स्वामी प्रेमेशानन्द को बोलते हुए सुना है - असल मिशन व्यर्थ होने से लोगों के लिए रामकृष्ण मिशन एक Social service buteau को छोड़ और कुछ नहीं होगा। और एक प्रश्न उठता है— कितने दिन तक रामकृष्ण मिशन प्रभावशाली रहेगा? जवाब में कह सकते हैं—जितने दिन मिशन के पास कुछ देने को होगा, उतने दिन वह जीवित रहेगा।

स्वामीजी का संघ दो स्तम्भ के ऊपर प्रतिष्ठित है। एक है—'आत्मनो मोक्षार्थम्' और दूसरा है जद्धिताय' 'भारत हिताय' नहीं 'जगद्धिताय। उद्देश्य कितना बड़ा, कितना विराट आदर्श है। चिन्ता इतनी बड़ी, किन्तु आरम्भ तो छोटे से ही करना पड़ता है। जैसे थोड़ी देर पहले आपने सुना सुन्दर वन के एक गरीब किसान के लड़के ने एक कुटीर बनाकर वहीं श्री रामकृष्ण की तस्वीर रख-कर छोटा करके ही उनके आदर्श को प्रतिफलित करने की चेष्टा कर रहा है। आध्यात्मिक उन्नति निसिद्ध कई बार अपेक्षित होती रहती है। अतः इस समय के अनुसार 'statisties' तथा हिसाब नहीं किया जा सकता। ठाकुर ने स्वयं ही कहा है मैं तथा मुझे तुम लोग इतने विद्वान होकर की मेरे पास आते हैं? तुम लोगों का क्या कोई उपकार हो रहा है। किसी एक का भी कुछ हुआ है, सुनकर मुझे संतोष होगा। उनके शिष्ट स्वामीजी ने भी कहा है, यदि जान सका कि मेरा यह जीवन किसी एक व्यक्ति के भी काम में लगा है या लगाकर जीवन सार्थक हुआ। फिर मैं हजार बार जाऊँ। आधुमिक युग शब्द स्वामीजी के प्रसंग में व्यवहार से लाया करता है, सच बात तो यह है कि इस युग में हम अभी भी नहीं पहुँचे हैं। स्वामीजी बहुत आगे निकल गए हैं। हम लोग बहुत पीछे हैं। अर्थात् उन्होंने जो बात कही है, वह अन्तत तीन शताब्दी आगे की कही है। उन्होंने मात्र बीज वपन करने का प्रयास किया है एक आभास देने का प्रयास किया है। और हम कितने निष्कपट और सरल हैं, सचमुच कितनी चाह है हममें, इसके ऊपर निर्भर करता है—उनकी इस वार्ता को हम आने वाले युग में कितना आगे ले जा सकेंगे। इसके अलावा और कुछ नहीं। ठाकुर के सामने एक दिन स्वामीजी कहते हैं— भगवान ने जो जगत् सृष्टि की यह केवल सृष्टि है? उससे बहुत अच्छे जगत् की मैं सृष्टि कर सकता था। श्री रामकृष्ण को कई बार इससे यह की अनेक भी नरेन्द्र के मुख से सुननी पड़ी है। स्वामी जी ने भी कहा जहाँ इतना दुःख कष्ट, वहाँ यदि ईश्वर हो तो भी मेरा लाभ होगा। यह प्रश्न ता

भी था, अब भी है। भविष्य में होगा। मुझे किसी वेद बाइबिल, शास्त्र की जरूरत नहीं होती। मेरी कोई सहायता न करें मेरे भीतर देवात्मा का पतन न करें।

अभी-अभी आपने एक सुन्दर उक्ति सुनी, की देश भक्ति का सर्टिफिकेट पाने के लिए कितना त्याग चाहिए कितना आगे बढ़ना पड़ता है। उससे जरा भी कम होने से नहीं होगा। सभी युग में कुछ उन्मादी, कुछ विरागी लोग से ही उन्हें ही sall of the earth कहा जाता है। वे हर युग हर देश, हर जाति में रहेंगे ही। इसीलिए स्वामीजी की बातों में pessimism नहीं है। वर्तमान युग में एक बात हर समय सुनते हैं कि, इस युग में कोई अच्छा आदर्श नहीं है। इतनी बड़ी शान्ति हम पर क्यों हावी हो गयी है? क्योंकि इस समय cash payment के युग में रह रहे हैं, इसलिए हर समय एक व्यवहारिक दृष्टिकोण हमें चालित करता है। हम चाहते हैं सब कुछ Computerized process में छपकर एक कागज पर उभर आए। किन्तु यह तो जड़ जगत में हो सकता है। आध्यात्म जगत् में यह सब धीरे-धीरे होता है। नैवेद्य नामक ग्रन्थ की एक कविता में रविन्द्रनाथ ने कहा है—

"प्रतीक्षा करना सीखो।
शत बर्ष तक एक पुष्प की कली प्रस्फुटित
करने हेतु, चलता है उसका चीर आयोज
काल तो नहीं हमारे साथ।"

हम बड़े अधीर हो रहे हैं—अभी ही क्यों कुछ नहीं होता। यह प्रश्न सारदा मठ मिशन की कई बार सुनना पड़ता है। मेरा उत्तर है, हम कुछ भी जहाँ कर रहे हैं। स्वामीजी ने हमें बड़ा स्वार्थपरक बना दिया है यह बात इसलिए कह रही हूँ, क्योंकि यहाँ मैं आया हूँ, अपने उन्नति की चेष्टा करने के लिए "आत्मनोमोक्षार्थम" के केन्द्र है। यह आदर्श सभी का है। यह हो सकता है कि यह आदर्श हमारे लिए अधिक प्रयोज्य है। क्योकि हम दूसरों के अन्न पर प्रतिपालित हो सके हैं। स्वयं का उपार्जित अन्न नहीं है भिक्षान्न पर प्रतिपालित होने से तो जीवन तिरस्कृत होने की बात है, यदि भीतर यह आत्ममर्यादा नहीं होती कि यह अन्न ग्रहण कर रहे हैं एक आदर्श सामने है इसलिए यही हमारी नित्य प्रार्थना है कि भक्तों को, समर्थकों, साधु अपने प्रतिपालित करने का प्रतिदान देते रहें—निष्कपट और सरल भाव से, अपने कर्म और चिन्ता में कोई दिखावा, कोई आगतिक उद्देश्य न रखते हुए। ठाकुर की आँखों से कोई बात छिपी नहीं रहती थी। किसी ने कहा कि वह दान ध्यान करेगा। सुनकर बोले—देखो, इससे शायद उसका नाम हो जाएगा। किसी ने कहा वह साधु बनेगा, तो ठाकुर बोले गेरुआ पहनने से लोग त्यागी समझकर रुपये पैसे देंगे। उनकी नजर से कुछ भी नहीं बच पाता था, असली कौन नकली कौन। आधुनिक युग है परीक्षा का युग, समालोचना का युग, तीक्ष्ण रुप से प्रत्येक वस्तु को बारिकी से परखने का युग। अभी हम बीसवीं शताब्दी के अन्तिम छोर पर खड़े हैं। इस युग में डरने की कोई बात नहीं है। जो कुछ भी आता है आने दो। जिस किसी धर्म का जो कोई भाव यहाँ आता है आने दो—हम भयभीत क्यों होंगे। हमारी एक सुदृढ़ नींव है। अतः वही बात उन्हें बतलाएँगे जो चिरदिन रहेगी। जो भी बलप्रद है, हम चिरकाल उसी का अवलंबन करेंगे। स्वामीजी कोई भेदाभेद बुद्धि लेकर पाश्चात्य देश नहीं गए थे। वे ले गए थे श्री रामकृष्ण की पताका, वेदान्त की वार्ता, आत्मानुसंधान का प्रकाश। यह प्रकाश निर्विचार सभी के ऊपर विकीर्ण होगा। स्वामीजी ने एक Universai religion का स्वप्न देखा था, जो religion जिस प्रकार ईसाइयों के लिए होगा उसी प्रकार ब्राह्मणों के लिए, बौद्धों और मुसलमानों के लिए भी। जिस धर्म का आलोक सब धर्मों के ऊपर किरण वर्षित करेगा। उन्होंने सभी का आह्वान किया है। आप लोग देखेंगे "महिमा

तव उद्भासित" नामक जो स्मारक ग्रन्थ का
प्रकाशित हुआ है उसके पीछे जिल्द में लिखा है
"निर्भीक होकर सभी द्वार उन्मुक्त करना होगा।
आने दो चारों ओर से रश्मिधाय, आने दो तीव्र
पाश्चात्य किरण, जो दुर्बल दोषयुक्त है, वह मरण-
शील है—उसे लेकर होगा भी क्या, जो वीर्यवान
बलप्रद है, वह अनश्वर है उसका नाश कौन कर
सकता है ?"

आज के सभी वक्ताओं ने इसी आत्मविश्वास की बात कही है। क्योंकि यही सत्य और पवित्रता के ऊपर प्रतिष्ठित है। इसी वाणी में अनन्त शक्ति निहित है। वह शक्ति है—सत्य की, पवित्रता की। सत्य पर प्रतिष्ठित शक्ति का नाश कौन कर सकेगा।

(बंगला में दिए गए व्याख्यान का हिन्दी अनुवाद।)

(सारदा मठ, इन्दौर से प्रकाशित स्मारिका से साभार)

अन्याय और अंधविश्वास के विरुद्ध है विवेकानंद

—श्री पुरुषोत्तम अग्रवाल

विवेकानंद का नाम सुनते ही औसत हिन्दू दिमाग में क्या तस्वीर उभरती है ? गेरूआ वस्त्र-धारी, सुदर्शन, तेजस्वी, संन्यासी जिसने सितम्बर १८९३ की शिकागो धर्म संसद में हिन्दू धर्म की महानता और मनीषा के झंडे गाड़ दिए। हिन्दू होने पर शरमाने की बजाय गर्व करना सिखाया और साबित किया कि हम किसी से कम नहीं। यह तस्वीर असत्य नहीं, अर्द्धसत्य है। इसकी व्यापक लोकस्वीकृति का कारण भी असल में इसका अधूरा-पन ही है। अपने धर्म पर गर्व विवेकानन्द अवश्य करते थे। इस गर्व का राजनीतिक रूप से पराधीन समाज के लिए अर्थ भी बहुत ज्यादा था। मामला राजनीतिक पराधीनता के बावजूद सांस्कृतिक स्वाभिमान बनाए रखने का था। लेकिन विवेकानन्द का स्वाभिमान कूपमंडूकों के आत्मविश्वास से तो भिन्न था ही, उन पक्षियों के आक्रामक गर्व से भी अलग था जिनकी सभा में दोपहर अंधेरी होती है।

विवेकानंद की समग्र चिन्ता और गतिविधि को एक अधूरी तस्वीर तक सीमित भी तो वे ही लोग करना चाहते हैं जो तीखे सवालों की चिलकती धूप के अस्तित्व तक से इंकार करने के इच्छुक हैं। ऐसे विवेकानंद उनके काम के हैं जो हिन्दुत्व पर गर्व करना सिखाएँ। लेकिन शूद्रराज और समाजवाद की बातें करने वाले विवेकानंद? कर्मयोगी की नैतिकता का आधार आस्तिकता को नहीं, सामाजिक न्याय के संघर्ष को मानने वाले विवेकानंद! वे तो झंझट पैदा करेंगे। सो उनकी अधूरी तस्वीर को ही सब कुछ मानो। संन्यासी की तेजस्विता पर गर्व करो, लेकिन उस आत्मसंघर्ष और आलोचनात्मक विवेक से कोई वास्ता न रखो जिससे तेजस्विता संभव हुई। विवेक की जीवन्त उपस्थिति को जड़ प्रतिमा बना दो और चुनिंदा तारीखों पर फूलमाला अर्पित कर दो। यही नहीं, इस प्रतिमा के जरिए ऐसे वैसे सवालों का मुँह बन्द कर दो, जिनसे विवेकानंद तब टकराए और सौ बरस बाद आज भी टकराते। परंपरा के अपहरण की इस राजनीति के शिकार विवेकानंद अकेले नहीं हैं। इसीलिए सवाल सिर्फ उनका न होकर सारी सांस्कृतिक विरासत को समझने और उसे मुक्ति की दिशा में विकसित करने का है। स्वयं विवेकानंद के शब्दों में, "ताकत के बूते निर्बल की असमर्थता का फायदा उठाना धनी मानी वर्गों का विशेषाधिकार रहा है, और इस विशेषाधिकार को ध्वस्त करना ही हर युग की नैतिकता है।"

विवेकानंद धार्मिक व्यक्ति थे, राजनीतिक नहीं। राजनीति से उनकी विरक्ति तो 'खबरदार, मुझे छूना मत' किस्म की थी। इसीलिए यह और भी ध्यान देने की बात है कि वे नैतिकता की परिभाषा विशेषाधिकार पर आधारित सत्तातंत्र के खिलाफ संघर्ष के रूप में करते हैं। तो क्या विवेकानंद धर्म का सिर्फ इस्तेमाल कर रहे थे? जो व्यक्ति यह कहे कि 'भूखे के सामने भगवान पेश करना उसका अपमान है,' वह कैसा धार्मिक व्यक्ति था? जो व्यक्ति यह पूछे कि 'धर्म को सामाजिक नियमों से क्या प्रयोजन?' और फिर कहे कि 'धर्म को कोई हक नहीं कि समाज के लिए नियम गढ़े। उसे चाहिए कि अपनी हद में रहे।' उसे क्यों कर धार्मिक माना जाए? खासकर आज के माहौल में जबकि 'साधु संत' खुलेआम राजनीतिक उठा-पटक में लगे हुए हैं, आखिर विवेकानंद के लिए धार्मिक होने का मतलब क्या था? उनकी कठोर सामाजिक आलोचना और सक्रियता का धार्मिकता से किस प्रकार का संबंध था? ऐसे सवालों के संदर्भ में विवेकानंद का अर्थ समझने के लिए रामकृष्ण परम-

हंस को समझना अनिवार्य है। साथ ही उस परिवेश के बुनियादी सवालों को भी, जिसकी बेचैनी विवेकानंद के धर्म में वाणी पा रही थी। ऊपर से देखें तो गुरु शिष्य दो विपरीत छोरों पर थे। विवेकानंद सुदर्शन, बलिष्ठ युवक थे, तो परमहंस क्षीणकाय। विवेकानंद अंग्रेजी पढ़े लिखे भद्रलोक थे, तो रामकृष्ण साधारण शिक्षित, दक्षिणेश्वर मंदिर के पुजारी। विवेकानंद संशयवादी, बुद्धिवादी थे तो परमहंस आस्थावान साधक।

रामकृष्ण की साधारणता ही उनकी असाधारणता थी। वे बहुत सहज रूप से विवेकानंद (जो तबतक नरेन्द्र ही थे) के सीधे सवाल का सीधा जवाब दे सकते थे, 'हाँ, मैंने ईश्वर को देखा है। ऐसे ही जैसे इस वक्त तुम्हें देख रहा हूँ।' बँधे तुले धर्म और महीन तर्क के प्रति उदासीन निजी अनुभव पर आधारित यह आत्मविश्वास रामकृष्ण परमहंस को मध्यकालीन भक्तों की परंपरा से जोड़ता है। रुढ़िवादी शास्त्रधर्म के विरुद्ध जो लोकधर्म भक्तों की बानी में रचा बसा है, रामकृष्ण परमहंस का व्यक्ति उसी लोकधर्म का मूर्त्त रूप था। साधना के नितांत निजी धरातल तक परमहंस ने हर धर्म—हिन्दू, इस्लाम, ईसाई—को अपनाया था। वे संवादी सबके थे, अंधानुयायी किसी के नहीं।

भक्ति संवेदना की विलक्षणता यही है कि उसने प्रेम को ही आधार माना- भक्त और भगवान का संबंध हो या मनुष्य और मनुष्य का। रामकृष्ण परमहंस के व्यक्तित्व में इस विलक्षणता ने प्रामाणिक और समकालीन अर्थ पाया तथा विवेकानंद के कर्म में व्यावहारिक विस्तार। विवेकानंद जब नारायण को दरिद्र में देखते थे, दरिद्र नारायण की सेवा को ही धर्म का सार कहते थे, तो वे उनके अपने शब्दों में 'गुरु के उपदेश को जीवन में उतारने की चेष्टा' ही कर रहे थे। यह उपदेश बहुत गहरे अहसास के रूप में मिला था, युवक नरेन्द्र को। जब उन्होंने निर्विकल्प समाधि पाने की साधक सुलभ इच्छा प्रकट की तो गुरु ने उन्हें झिड़क दिया, "धिक्कार है तुम्हें। मैं समझता था, तुम असंख्य आत्माओं के वटवृक्ष बनोगे तुम केवल अपना स्वार्थ विचार रहे हो।"

परमहंस केवल नरेन्द्र को धिक्कार रहे थे या उस समूचे बोध को, जिसके लिए धार्मिक होने का अर्थ या सामाजिक यथास्थिति का सहायक होना या फिर केवल अपने मोक्ष की चिन्ता करना। यह धिक्कार नरेन्द्र के लिए इस सचाई का साक्षात्कार बना कि मुक्ति अकेले को नहीं मिला करती। वे धर्म या किसी राजनीतिक प्रोजेक्ट के लिए इस्तेमाल नहीं कर रहे थे, वे निस्संदेह धर्म को जी रहे थे, लेकिन उसे नया अर्थ देते हुए। जड़ता के स्थान पर संघर्ष से धर्म का परिभाषित करते हुए। विवेकानन्द उन भाग्यवानों में से नहीं थे, जिन्हें हर सवाल के तैयार जवाब मिल जाते हैं, वे उन अभागों में से भी नहीं थे जो ऐसे रेडीमेड जवाबों को जीवन, धर्म और संस्कृति का सार मान बैठते हैं। उन्होंने न तो धर्म की प्रचलित अवधारणा स्वीकारी, न देश का चालू विचार। उन्होंने सचमुच भारत की खोज की—पूरे दो बरस देश के कोने-कोने में घूम कर उन्होंने भारतीय समाज की ताकत और कमजोरी को परखा। इस परख के ही क्रम में वे स्वयं को भी परख सके। जो लोग समझते हैं कि विवेकानन्द को सारा बोध कन्याकुमारी के तट पर एक ही रात में हासिल हो गया, वे विवेकानंद की आंतरिक-बाह्य खोज के मर्म को समझ ही नहीं सकते।

१८९१ में पैर में चक्कर लेकर निकले तेजस्वी संन्यासी विवेकानन्द ने सब कुछ त्याग दिया था। सब कुछ त्याग देने का नुकसान भी होता है। वह यह कि व्यक्ति स्वयं को बहुत ऊपर समझने लगता है। 'पवित्र' होने के नाते उसे उन सबसे घृणा का अधिकार प्राप्त हो जाता है, जिन्हें वह स्वयं अपवित्र मानता हो। १८९२ में स्वामी विवेकानंद खेतड़ी नरेश के अतिथि थे। एक दिन ऐसा हुआ कि एक

वेश्या को गाना सुनाने के लिए तलब किया गया। पवित्र संन्यासी क्षुब्ध होकर कमरे से चले गए। दुनियादार लोगों की वासना और तिरस्कार की आदि स्त्री को पवित्र संन्यासी का यह तिरस्कारपूर्ण रवैया बहुत गहरे चुभा और यह चुभन उसने व्यक्त की, सूरदास के पद में 'प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो'—यह विवेकानन्द के पवित्रतावादी अहंकार के विगलन का क्षण था। उसके बाद वे कभी लांछितों, वंचितों और दलितों के प्रति सामाजिक तिरस्कार में हिस्सा नहीं बँटा सके। बल्कि इन लोगों के लिए उनकी करुणा समाज के 'पवित्र' भद्रलोक की कठोरतम आलोचना में व्यक्त हुई।

विवेकानंद संभवतः अपने समय के अकेले विचारक थे, जिन्होंने भारत के उच्च वर्ग और सवर्ण समाज को बतौर सामाजिक समूह के ऐसी लगती हुई बातें कहीं; 'शुद्ध आर्य रक्त का दावा करने वालो, दिन रात प्राचीन भारत की महानता के गीत गाने वालों जन्म से ही स्वयं को पूज्य बताने वालों, भारत के उच्च वर्गों, तुम समझते हो कि तुम जीवित हो। अरे, तुम तो दस हजार साल पुरानी लोथ हो....तुम चलती-फिरती लाश हो....मायारूपी इस जगत की असली माया तो तुम हो, तुम्हीं हो इस मरुस्थल की मृगतृष्णा... तुम हो गुजरे भारत के शव अस्थि पिंजर . क्यों नहीं तुम हवा में विलीन हो जाते, क्यों नहीं तुम नए भारत का जन्म होने देते ?"

विवेकानंद समकालीन राजनीति से दूर ही रहते थे, लेकिन उनका धर्म सामाजिक सत्ता के सवाल से लगातार टकराता था। यही कारण है कि राजनीति से कोई वास्ता न रखने वाले स्वामी विवेकानंद बार-बार राजनीतिकर्मियों के प्रेरणा स्रोत बने, और यही कारण है कि शोषणकारी समाजसत्ता को बनाए रखने के इच्छुक लोग विवेकानंद को हथियाने की कोशिश बार-बार करते रहें और अब भी कर रहे हैं ताकि उनकी प्रखर सामाजिक चेतना को छद्म राष्ट्रवाद के हित में इस्तेमाल किया जा सके। इस खतरे का अहसास स्वयं विवेकानंद को था। इसीलिए उन्होंने कहा था। 'लोग देशभक्ति की बातें करते हैं। मैं देशभक्त हूं, देशभक्ति का मेरा अपना आदर्श है।...सबसे पहली बात है, हृदय की भावना। क्या भावना आती है आपके मन में यह देखकर कि ना जाने कितने समय से देवों और ऋषियों के वंशज पशुओं सा जीवन बिता रहे हैं ? देश पर छाया अज्ञान का अंधकार क्या आपको सचमुच बेचैन करता है ? - यह बेचैनी ही देशभक्ति का पहला कदम है।"

गरीबी, शोषण और अज्ञान के अहसास से बेचैन होना ही देशभक्ति का पहला प्रमाण है—पिछले सौ साल में इस कसौटी की प्रासंगिकता बढ़ी ही है। इस माहौल में जबकि सामाजिक न्याय और देशभक्ति को अलग-अलग किया जा रहा है, जबकि राष्ट्रवाद को आक्रामकता और घृणा का पर्याय बनाया जा रहा है, तब यह कसौटी सच्ची देशभक्ति और छद्म राष्ट्रवाद के बीच सार्थक अन्तर करने के लिए बहुत जरूरी है। इन असली सवालों को राजनीतिक एजेण्डा से गायब ही कर देने को जो लोग राष्ट्रवाद कहते हैं, और फिर विवेकानंद के नाम की माला जपते हैं, वे सचमुच धन्य हैं। और धन्य है पाखण्ड कर सकने की उनकी क्षमता।

विवेकानंद के समय को हम नवजागरण का समय कहते हैं। उनके परिवेश की बुनियादी समस्या यही थी। भारतीय समाज का सामाजिक-सांस्कृतिक नवजागरण। कैसे यह महादेश अपनी सांस्कृतिक पहचान फिर से प्राप्त करे ? कैसे यह विराट् जन-समुदाय सामाजिक स्पंदन प्राप्त करे ? कौन-सी बाधाएँ हैं इस संभावना के रास्ते में। कौन-सा सामाजिक तबका हटा पाएगा इन बाधाओं को ? हमारे अपने समय में भी ये सवाल अप्रासंगिक नहीं हो गए हैं, बल्कि पिछले सौ साल के अनुभवों ने कुछ नए सवाल और खड़े कर दिए हैं। विकास

का अर्थ और उसकी कसौटी क्या है? भारतीयता की पहचान क्या है? दलितों, स्त्रियों की कोई हिस्सेदारी सामाजिक सत्तातंत्र में होनी चाहिए या नहीं? यदि हाँ तो कैसे? यदि नहीं तो क्यों नहीं? धर्म की मनुष्य के अंतर्जगत तथा सामाजिक जीवन में क्या भूमिका है? हम अपने समाज की किस बात पर गर्व करें और किसके खिलाफ संघर्ष? ये सवाल हमारे वर्तमान को गहरे में मथ रहे हैं। इस मंथन के माहौल में हम विवेकानंद की बेचैनी से क्या हासिल कर सकते हैं? उनकी भावनाओं तथा विचारों की हमारे वक्त में दिशा कौन सी हो सकती है? परम्परा को समझने के असली सवाल ये ही हैं, और इन्हीं को भुलाने की कोशिश वे लोग करते हैं जो विवेकानंद जैसी बेचैनी मेधा को एक अधूरी तस्वीर में बदलने का अनुष्टान कर रहे हैं।

'कर्मयोग का आदर्श' नामक प्रसिद्ध व्याख्यान में विवेकानंद ने कर्मयोग की विलक्षण परिभाषा की, "इस प्रकार कर्मयोग निःस्वार्थ सद्कर्मों द्वारा मुक्ति प्राप्त करने का नैतिक और धार्मिक प्रयत्न है। कर्मयोगी के लिए जरूरी नहीं कि वह किसी सिद्धान्त विशेष का अनुगमन करे, आत्मा आदि के सवालों पर विचार करे। भगवान में विश्वास करना तक कर्मयोगी के लिए अपरिहार्य नहीं है।" यह इस कारण, क्योंकि विवेकानंद के अनुसार जीवन का मूल प्रतिमान आस्तिकता नहीं, बल्कि नैतिकता है, और नैतिकता का सार है स्वतंत्रता के लिए संघर्ष, शोषण को विशेषाधिकार मानने वाली व्यवस्था के विनाश के लिए संघर्ष।

विवेकानंद ने हिन्दू समाज के संदर्भ में इन सारे सवालों पर विचार किया। दासता का स्रोत, उनके अनुसार, कूपमंडूकता और जातिप्रथा में निहित था। वे अपने समाज से सच्चा प्यार करते थे। इसलिए झूठे गर्व के जरिए लोगों को भरमाने की बजाय ताकत और कमजोरी को ठीक-ठीक पहचानने का प्रयत्न करते थे। कूपमंडूकता और जातिप्रथा के जरिए समाज की छाती पर सवार उच्च वर्ग को धिक्कारते हुए विवेकानंद राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए बने बनाए राष्ट्रवाद की पोटली उठा लाने के लिए नहीं दौड़ पड़ते थे। वे जानते थे कि राष्ट्र दरिद्र-नारायण में निवास करता है, और उसे "जागना है हलधर किसान के झोपड़े से, मछुआरे की कुटिया से, नीची जातियों के बीच से— राष्ट्र को जागना है कारखानों और बाजारों से, जंगलों और पहाड़ों के निवासियों के बीच से। इन साधारण लोगों ने हजारों बरस अत्याचार सहे हैं, और इसी कारण उन्हें रक्तबीज विलक्षण जीवनी शक्ति प्राप्त हो गई है....उन्हें आधी रोटी भी मिल जाए तो ऐसी ऊर्जा उपजेगी उनके बीच, जो सारी दुनिया को हिला कर रख देगी। भारत के उच्च वर्गों, अतीत के अस्थि पिंजरों, ये जनसाधारण ही हैं आनेवाले भारत के भाग्य विधाता।"

इस आने वाले भारत की व्यवस्था की कल्पना विवेकानंद शूद्रराज के रूप में करते थे। शूद्र शब्द का प्रयोग भी वे केवल जातिवाचक अर्थ में नहीं, शोषित वर्ग के अर्थ में करते थे। उन्होंने उपनिवेशवाद के बारे में कहा था कि "इसके कारण समूचे के समूचे राष्ट्र शूद्र दशा में पहुँच गए हैं।" वे इतिहास को ब्राह्मण राज, क्षत्रिय राज और अपने समकालीन समय को वैश्यकाल के रूप में देखते हुए आने वाले समय में शूद्रराज अर्थात् दलितों, शोषितों के राज को अपरिहार्य मानते थे। विवेकानंद संभवतः पहले भारतीय थे, जिन्होंने स्वयं को सामाजिक आर्थिक अर्थ में 'समाजवादी' कहा, बेशक इस सावधानी के साथ कि "भले ही समाजवाद आदर्श व्यवस्था न हो, लेकिन न कुछ से तो बेहतर ही है।"

विवेकानंद का विरोधाभास यह था कि वे जनसाधारण को गैरराजनीतिक रखना चाहते थे, जो कि संभव ही नहीं था। सामाजिक सांस्कृतिक दासता के स्रोत पर चोट ही तो असली राजनीतिक कार्यवाही है, जो यह चोट करना चाहे वह स्वयं

राजनीति से कितना ही दूर भागे, राजनीति उसे कहाँ भागने देगी ? इस बात को ध्यान में रखते हुए सोचना चाहिए कि इस वर्तमान में विवेकानंद के विचारों की दिशा क्या हो सकती है ?

विवेकानंद कवि भी थे। अपने अंतर्द्वन्द्वों से वे कई बार कविता में ही टकराते थे। वे सच्चे धार्मिक व्यक्ति थे, सो कई बार उनके मन में नितांत वैयक्तिक साधना की इच्छा बलवती हो उठती थी। द्ररिदनारायण की सेवा के गुरुमंत्र और वैयक्तिक साधना के इस द्वंद्व से विवेकानंद बार-बार टकराते दीखते हैं। कविताओं में, व्यक्तिगत पत्रों में, यहाँ तक कि सार्वजनिक लेखों, भाषणों तक में। इस सारे आत्मसंघर्ष के बाद हम उनके जीवन से अंततः वही सच्चाई उभरती देखते हैं, जिसे रोमाँ रोलाँ ने ये शब्द दिए हैं: "हाँ, विवेकानंद जैसा कवि बार-बार इस नर्क में लौटने को बाध्य हैं। यह उसकी नियति ही है, जीने का एकमात्र तर्क ही है बार-बार जन्म लेना, इस तर्क की ज्वाला से संघर्ष करना, उससे झुलसते जनों को जान देना, उन्हें बचाने के लिए स्वयं अपनी आहुती दे देना ही उसका धर्म है।" 'धर्म' की इस समझ के कोण से देखें तो विवेकानंद वहाँ नहीं हैं, जहाँ खोखले आक्रामक 'गर्व' की टकसाल में हिन्दू राष्ट्र का खोटा सिक्का ढाला जा रहा है। बल्कि वे वहाँ हैं, जहाँ उनकी कल्पना के शूद्रराज की संभावनाएँ टटोली जा रही हैं। विवेकानंद उन लोगों के साथ कैसे हो सकते हैं जो 'इस नर्क की ज्वाला' में और ईंधन डाल रहे हैं ? कैसे हो सकते हैं वे उनके साथ जो करोड़ों वंचितों को आपस में लड़ा कर धर्म और देशभक्ति का नाम लेने का दुस्साहस करते हैं ? हमारे माहौल में दासता के स्रोत क्या हैं ? उसके नए-नए रूप कौन से हैं ? मुक्ति की संघर्ष यात्रा किस रास्ते चलेगी ? जो ये सवाल सच्चे मन से पूछे, विवेकानंद की परिभाषा पर खरे उतरने वाले देशभक्त और कर्मयोगी वही हैं। ऐसे लोग विवेकानंद के प्रतिभा पूजक हों या न हों, उनके विचारक्रम में हमराही अवश्य हैं। इस माहौल में विवेकानंद के सच्चे उत्तराधिकारी महंत, मठाधीश और राजमाताएँ नहीं, शंकरगुहा नियोगी और मेधापाटकर सरीखे लोग हैं। वे किसान, मजदूर, दलित, स्त्रियाँ तथा नौजवान हैं जो शोषण मुक्त समाज की स्थापना और मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा के लिए इस नर्क की ज्वाला से जूझ रहे हैं।

(नव भारत टाइम्स, १३ सितम्बर १९९२ से साभार)

धार्मिक सद्‌भाव से मानव सभ्यता की उन्नति (१)

— श्री पी० वी० नरसिंह राव
प्रधानमंत्री, भारत

इस महान समारोह में शामिल होकर मुझे बहुत खुशी हुई है। इसके आयोजकों ने मुझे यहाँ उपस्थित होने का अवसर प्रदान किया, इसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

धर्म की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। भले ही इस संबंध में अलग-अलग विचार प्रकट किए गए हैं, फिर भी, सामान्य रूप से यह स्वीकार किया जाता है कि धर्म एक ऐसी जीवन शैली का समर्थन करता है जिसमें सांसारिक तथा शाश्वत कल्याण निहित होता है :

"यतोभ्युदय-निःश्रेयस सिद्धिः सधर्मः"।

इस देश में इस 'धर्म' शब्द के कारण हमें बहुत मुश्किल होती है। इसका अर्थ भिन्न-भिन्न संदर्भों में, भिन्न-भिन्न लोगों के लिए भिन्न होता है। इसका अर्थ 'विधि' हो सकता है। इसका अर्थ 'कर्तव्य' हो सकता है। यही नहीं इसका अर्थ 'धर्म' भी हो सकता है। और जब आप 'सधर्म' जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं तो इसका अर्थ धर्म के उसी स्वरूप से है। इसलिए इस शब्द की अनेक व्याख्याएँ होने से हमने कुछ हद तक नुकसान उठाया है। धर्म का अर्थ देश के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न लगाया जाता है। एक भाग में इसका एक अर्थ लगाया जाता है, तो दूसरे भाग में धर्म का अर्थ कुछ और समझा जाता है। मुश्किल तो तब आती है जब हम अखिल भारतीय स्तर पर कोई सम्मेलन आयोजित करते हैं। यह निश्चित नहीं होता कि कोई व्यक्ति जिस अर्थ में 'धर्म' शब्द का इस्तेमाल कर रहा है, दूसरा व्यक्ति भी उसका वही अर्थ लगा रहा है या नहीं। यह बात थोड़ी और स्पष्ट करनी होगी। जब हम इस देश में 'धर्मनिरपेक्षता' के संबंध में बात करते हैं, तो वास्तव में हमारा यह मतलब नहीं होता कि हम अधार्मिक हैं या हमारा राष्ट्र धार्मिक आस्था अथवा किसी भी प्रकार के धर्म से रहित है। वास्तव में, हम जो कहना चाहते हैं, उसका मतलब शायद कुछ आसान शब्दों में यह है कि हम सब धर्मों को समान मानते हैं। हम किसी धर्म को पसंद या नापसंद नहीं करते। हमारे यहाँ कोई भी धर्म पहले दर्जे का या दूसरे दर्जे का नहीं है। ठीक वैसे ही जैसे कि हमारे देश में, कोई भी व्यक्ति पहले दर्जे का या दूसरे दर्जे का नागरिक नहीं है। यही बात धर्म के संबंध में भी है। इस बात को समझना मुश्किल है क्योंकि कोई भी व्यक्ति अगर वह अपने धर्म को काफी अच्छी तरह से नहीं जानता, तो वह यही मानता है कि उसका धर्म ही सबसे अच्छा है। जिस क्षण वह अपने धर्म को ठीक से जान जाएगा उसी क्षण उसका अहंकार मिट जायगा। परन्तु कितने लोगों का अहंकार मिटता है? अपने धर्म को ठीक से न जानने के बहुत फायदे हैं, इससे राजनीतिक लाभ होते हैं, इससे सब प्रकार के निहित स्वार्थों की पूर्ति होती है। यही वह बुराई है जिसे हमें कभी-न-कभी समाप्त करना ही होगा। अगर हमने इसे दूर नहीं किया तो हमारा पतन निश्चित है। धर्म के नाम पर किए जा रहे ढोंग से हमारा यह देश और समाज नष्ट हो

जाएगा। पांच हजार वर्षों से अगर हमारा अस्तित्व बना हुआ है तो इसीलिए कि अब तक हम पतन के इन रास्तों की ओर नहीं बढ़े थे। मैं अपने देश के विषय में कह रहा हूँ कि अब हमारे सामने यह प्रश्न है कि क्या हम इसे पतन की ओर जाने से रोक सकते हैं? क्या हम सचमुच ऐसा करने में समर्थ हैं? क्या हम वास्तव में उस बात की आवश्यकता व महत्व को महसूस कर सकते हैं जो हमें करना है? हमारे सामने यही असली सवाल है।

धर्म के बारे में हमारे सिद्धान्त तथा परम्पराएँ

धर्म आस्था के रूप में मनुष्य का मार्गदर्शन करता है। वह हमें उन दायित्वों तथा कर्तव्यों का बोध कराता है जो हमें करने हैं। धर्म सामाजिक संगठनों के लिए नियम भी बनाता है। धर्म के अनेक पहलू हैं, जैसे 'आचार खंत' या 'व्यवहार खंत'। वे सब उसी एक समष्टि के अंश हैं परन्तु वे अलग-अलग हैं। वे एक-दूसरे से भिन्न हैं और उनको भिन्न ही मानना पड़ता है। इस प्रकार व्यवहार में धर्म का मतलब ऐसे नियमों-सिद्धांतों, उपासना-पद्धति, आचार संहिता और संगठित समाज से है, जो किसी धर्म विशेष तथा उसके रीति-रिवाजों को बढ़ावा देता है। इसलिए धर्म को उपदेश (शासन) तथा पथ (मार्ग) कहा गया है। यद्यपि धर्म जटिल तथा बहुआयामी होते हैं, फिर भी, निष्पक्ष रूप से विचार करें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनमें कुछ बातें तो अनिवार्य रूप से होती हैं जबकि कुछ आकस्मिक होती हैं। वस्तुतः इन्हें आकस्मिक भी नहीं कहना चाहिए क्योंकि यहाँ भी शब्दों से भ्रम उत्पन्न होने वाली स्थिति है। इसके लिए सही शब्द है 'याहच्छिक'। धर्मों की कुछ बातें याहच्छिक होती हैं। इन्हें अंग्रेजी में आकस्मिक कहना उचित नहीं होगा। ये ऐसी बातें हैं जो स्वतः धर्मों में आ गयी हैं। यहाँ एक बार फिर शब्दों की समस्या खड़ी होती है। धर्म का मूल तत्व, 'श्रद्धा' है, जिसे प्रज्ञा से उत्पन्न माना जाता है। इस श्रद्धा शब्द के भी भारत में विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। आंध्र प्रदेश में इसका अर्थ केवल 'ध्यान' है, उत्तरप्रदेश में यह 'श्रद्धा' है। श्रद्धा तथा ध्यान में बहुत बड़ा अंतर होता है, भले ही इन दोनों के बीच कुछ सूक्ष्म-सा संबंध भी हो सकता है। अब हमारे सामने फिर वही कठिनाई आती है। यदि आप हैदराबाद या विजयवाड़ा में श्रद्धा के विषय में बात करते हैं यकीन मानिए श्रोतागण उसका अर्थ सिर्फ 'ध्यान' ही समझेंगे, उससे अधिक कुछ नहीं और इस इस एक शब्द का गलत अर्थ लगाने से सारे भाषण या प्रवचन का मंतव्य ही समाप्त हो जाएगा। मनु वास्तव में अपनी श्रद्धा के अनुसार बनता है, प्रत्येक मनुष्य वैसा ही होता है जैसी उसकी श्रद्धा होती है:

"श्रद्धामयो यम पुरुषः यो यच्छ्राद्धाः स एव सः"।

श्रद्धा को साधारणतया वैसा ही माना जाता है जैसा कि परंपरागत रूप से स्वीकार की गयी धारणाएँ। केवल कुछ लोग ही श्रद्धा की स्थिति से ऊपर उठकर प्रज्ञा की स्थिति में पहुँचते हैं। बल्कि अधिकांश लोगों के लिए तो श्रद्धा निर्विवाद वचनवद्धता की चीज है। इसी से धार्मिक श्रद्धा एक अजीब सी दुविधा वाली चीज बन जाती है। श्रद्धा मानव प्रकृति तथा संस्कृति का केवल सबसे पुरातन तथा व्यापक और सबसे गहन तथा सबसे उदात्त पहलू हैं। बल्कि, उसे आसानी से विकृत किया जा सकता है और उसका दुरुपयोग भी किया जा सकता है। इस तरह यह एक सतही चीज भी है। मैं अमुक बात पर इसलिए विश्वास करता हूं, क्योंकि मेरे पिता जी का इसमें विश्वास था। मेरे पिता अमुक बात पर इसलिए विश्वास करते हैं क्योंकि उनके पिताजी का भी इस पर विश्वास था। इस प्रकार एक सिलसिला

बन जाता है। मेरे पिता ऐसा मानते थे इसलिए मैं भी यही मानता हूं। यह मेरे लिए किसी बात पर विश्वास करने का पर्याप्त कारण हो सकता है। लेकिन फिर आप मुझसे पूछ सकते हैं कि मैं इस पर क्यों विश्वास करता हूँ? और यही असली सवाल है। इसलिए सवाल मत पूछिए। लेकिन दुर्भाग्यवश, हम ऐसे युग में जी रहे हैं जिसमें आप लोगों से यह नहीं कह सकते कि वे आपसे सवाल न पूछें। आपका बेटा आपसे यह सवाल पूछ सकता है, फिर आपका पोता आपसे पूछेगा। यदि आप उनकी इस जिज्ञासा को संतुष्ट नहीं कर सके तो आप उसे घूर कर या धमका कर चुप करा देंगे लेकिन ऐसा करके आप कदाचित उसके साथ न्याय नहीं कर रहे हैं। आप पिता के रूप में भी कर्तव्य का निर्वाह नहीं कर रहे हैं। आप कोई काम इसलिए करते हैं क्योंकि आपके पूर्वज इसे करते आ रहे हैं। लेकिन परम्पराओं का पालन करना एक सीमा तक तो सही है परन्तु सब कुछ परंपरा के अनुसार करना उचित नहीं। परंपरा से-कहीं-न कहीं विचारशीलता जुड़नी ही चाहिए। उससे आप आत्मनिर्भर होते हैं।

धर्म पर विश्वास न करने वाले इतिहासकार तथा दार्शनिक भी, ईसा मसीह या बुद्ध, मोजेज या मोहम्मद साहब की उदात, नैतिक श्रेष्ठता को बेझिझक स्वीकार करेंगे। उनके जीवन तथा उपदेशों ने जन सामान्य को अनुप्राणित करने और भाईचारे को बढ़ावा देने के साथ-साथ मनुष्य जाति को त्याग, दया, करुणा तथा सेवा आदि जैसे श्रेष्ठ कार्य करने के लिए प्रेरित भी किया है। फिर भी, धर्म का गलत अर्थ लगाने से अंध श्रद्धा, अंध विश्वास, संघर्ष तथा हिंसा को बढ़ावा मिलता है। यूरोप में धर्म-निरपेक्षता को राज्य की नीति के मूल सिद्धांत के रूप में मान्यता 16वीं तथा 17वी शताब्दियों में दीर्घ-कालीन युद्धों के बाद मिल पायी।

हालांकि भारत में प्राचीन काल या मध्यकाल में तथाकथित धार्मिक युद्ध नहीं होते थे, परन्तु उस काल में राजाओं के बीच युद्ध तो होते ही रहते थे। एक राजा बौद्ध होता था, तो दूसरा हिन्दू होता था और तीसरा किसी अन्य धर्म का अनुयायी होता था। परन्तु युद्ध मिले-जुले होते थे। सेनाएँ मिली-जुली होती थीं। ऐसा बिल्कुल नहीं होता था कि हिन्दुओं की सेना मुसलमानों के विरुद्ध लड़ रही है। भारत में यह कभी नहीं हुआ। हम अभी तक उस सांप्रादायिक फूट पर विजय प्राप्त नही कर सके हैं, जिसके बीज ब्रिटिश शासन काल के दौरान बोये गये थे। वह इस देश में अंग्रेजों द्वारा लाई गई एक बहुत ही नई बात थी जिससे हम अभी तक उबर नहीं पाए हैं। धार्मिक तनाव की ओर प्रवृत्त होने की इस भावना को मिटाने का स्पष्ट तरीका यह है कि विनम्रता, सहिष्णुता तथा ईमानदारी से प्रयास किए जाएँ और बातचीत से आपसी समझ-बूझ को बढ़ावा दिया जाए। मैं तो इससे एक कदम और आगे बढ़कर यह कहूँगा कि दूसरों के साथ बात करने से पहले आप अपने स्वयं के धर्म के विषय में कुछ जानें। यह निरंतर चलने वाली बातचीत है। आप भारत जैसे देश में इस बातचीत से बच नहीं सकते, क्योंकि यह एक ऐसा धार्मिक देश है, जिसके कण-कण में धर्म समाया हुआ है।

भारतीय आध्यात्मिकता—स्वामी जी की व्याख्या

इस प्रसंग में 11 सितम्बर, 1893 के उस यादगार दिवस का स्मरण हो आता है जिस दिन शिकागो में प्रातः दस बजे विश्व धर्म संसद का सम्मेलन शुरू हुआ था। संपूर्ण मानव सभ्यता के एक महत्वपूर्ण पक्ष के रूप में धर्म की भूमिका को उजागर करने के लिए इस सम्मेलन का आयोजन किया गया था। क्या कोई धर्म की इस भूमिका को नकार सकता है। आप चाहे किसी भी बात को नकार दें, लेकिन यह एक ऐसी बात है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता, जिसने भी इसे नकारने का प्रयास किया उसे दुःख उठाना पड़ा।

सर्वोच्च महत्त्व की वस्तु के रूप में धार्मिक आस्था के स्वरूप को उजागर करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संगठित रूप से प्रयास करने तथा इस क्षेत्र में सहयोग की आवश्यकता महसूस की गयी। विश्व बंधुत्व पर गहरी आस्था और विभिन्न धर्मों के बीच आपसी समझ तथा विचारों के आदान-प्रदान के उद्देश्य से आयोजित धर्म-संसद एक अभूतपूर्व समागम था। दुनिया भर के अनेक जाने-माने लोगों ने इसमें भाग लिया और युगान्तरकारी उपलब्धि के रूप में इस आयोजन की सराहना की। यह पहला मौका था जब पश्चिम के ईसाई दार्शनिक तथा संत एशिया के विभिन्न संप्रदायों और मत-मतांतरों के प्रतिनिधियों के साथ बात-चीत के लिए एकत्र हुए थे। भारत का प्रतिनिधित्व देश के महान सपूत स्वामी विवेकानंद ने बड़े शानदार तरीके से किया।

स्वामी विवेकानंद ने अपने भव्य व्यक्तित्व और ओजस्वी वाणी से श्रोताओं को न केवल मंत्र-मुग्ध कर दिया था बल्कि उन्होंने धर्म संसद के आयोजन के मुख्य उद्देश्य को आत्मसात कर उसे भारत की युग-युग से चली आ रही उदार आध्यात्मिकता के साथ समन्वित कर ऐसी भावपूर्ण अभिव्यक्ति दी जो मानवता के लिए स्थायी महत्त्व की यादगार चीज बन गयी है। स्वामी विवेकानंद के भाषण और धर्म-संसद में उनके प्रश्नों में इस महान आयोजन के पीछे अंतर्निहित भावना पूरी तरह परिलक्षित होती है। उनका संदेश आज भी हमें प्रेरणा प्रदान करता है। इसमें न सिर्फ धर्म-संसद के आयोजन के उदात्त विचार तथा इसके उद्देश्य की ही अनुगूँज सुनाई देती है बल्कि यह हमें इस बात का भी साक्षात् स्मरण दिलाता है कि सच्चा धर्म क्या है और इसकी सही भारतीय अवधारणा क्या है।

बड़े दुर्भाग्य की बात है कि स्वामी विवेकानंद के व्यक्तित्व के इसी पक्ष को बिल्कुल गलत समझा गया है और गलत तरीके से प्रस्तुत किया गया है। उनको लेकर जो कुछ कहा जा रहा है वह उससे एकदम उलटा है जो वे वास्तव में मानते थे। स्वामी विवेकानन्द के बारे में इससे बुरी बात और क्या हो सकती है? उनकी छवि को इससे अधिक नुकसान पहुँचाने वाला कार्य और क्या हो सकता है? लेकिन हमारे महान देश में ऐसी गलत बातों की कल्पना करने में माहिर 'प्रतिभाएँ' भी मौजूद हैं। आज जब संकीर्ण धार्मिक कट्टरपन और संघर्ष का बोलबाला है तो ऐसे में उनके संदेश पर विचार करना बहुत उचित होगा। (क्रमशः)

स्वामी स्तवन

—प्रो० पद्माकर झा
छपरा

हे मंगलमय ! हे युगनायक !
शिव चिदाकाश में संपोषित,
हे अभय-साम के उद्गायक !

परमहंस प्रभु के अनुगामी,
भव वारिधि के महायान !
युगाकाश के घोर तिमिर पर
हे आरोही अंशुमान !

द्वन्द्वातीत, तुरीय होकर भी
विश्ववंध स्वामी हो।
निजानन्द निमग्न रहकर भी
जनमन अंतर्गामी हो !

नवभारत के अमर पितामह,
युग निर्माता आदि पुरूष हो।
देश काल अतीत होकर भी
सार्वभौम अद्यतम अंकुश हो,

अद्वैत ज्ञान के संवाही
पूरब-पच्छिम के अमर दूत,
दलित देश के विषपायी
हे नीलकंठ योगी अवधूत !

नवभारत के सृजन हेतु
सेवा योग सिखाया तुमने।
जीव प्राण की महागुहा में
शिव प्रत्यक्ष दिखाया तुमने।

वीरेश्वर शिव, विश्वनाथ-सुत,
भुवन-ईश्वरी नन्दन हो !
नवशंकर, समाधि-सिद्ध तुम
राष्ट्रभाल पर चन्दन हो !

हे भयहारी, गर्वप्रहारी,
सार्वभौम मानव अनिकेत !
स्वीकारो प्रणाम भावाकुल
जनमन अंतर के अभिप्रेत !

इतिहास-पुराण (१)

—ब्र० मोक्ष चैतन्य
बेलुड़ मठ

जिन उत्तम उपदेशों से हमारा जीवन पवित्र होता है, वे उपदेश तीन प्रकार के हैं — प्रभु सम्मित्, सुहृत्-सम्मित और कान्ता सम्मित। किसी कारण को बिना बताए दिये जाने वाले उपदेश प्रभु-सम्मित कहे जाते हैं, जैसे राजाज्ञा। वेदों एवं धर्मशास्त्रों के उपदेश प्रभु-सम्मित हैं। मित्रवर प्रभुत्व से नहीं, किन्तु स्नेह के कारण मित्र की भलाई के लिए जो सुझाव देते हैं, वे सुहृत्-सम्मित माने गये हैं। ये सुझाव भी उपदेश ही हैं। इतिहास-पुराणों में कथा-कहानी के द्वारा दिये जाने वाले उपदेश सुहृत्-सम्मित हैं। अपने मधुर व्यवहार से अपनी ओर आकृष्ट करनेवाली बातें कान्ता-सम्मित हैं। इस कोटि में रघुवंशादि काव्य आते हैं।

सुहृत्-सम्मित होने के कारण इतिहास-पुराण अति लोकप्रिय है तथा हिन्दूधर्म में इसका बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दूधर्म एवं समाज को वर्तमान रूप देने का सर्वाधिक श्रेय इतिहास पुराण को ही है। धर्म एवं दर्शन के मुलभूत सिद्धांत हमें वेदों तथा धर्मशास्त्रों से प्राप्त हुए हैं, लेकिन उन सिद्धांतों का व्यावहारिक जीवन में प्रयोग इतिहास-पुराण ने ही हमें सिखाया है। वेद अत्यन्त दुरुह हैं। प्राचीन काल में ब्राह्मण-बालक का उसके आठवें वर्ष में उपनयन-संस्कार होता था। वह बहुत समय तक गुरु-गृह में रहकर वेदों का अभ्यास करता था। उसके पश्चात् वेदों का अर्थ ग्रहण करने के लिए वह वेदांगों का अध्ययन करता था। किन्तु इतने परिश्रम करके भी वेदों का जो अर्थ समझा जाता था, वह उसका केवल ब्राह्मग अर्थ होता था। वेद का एक निगूढ़ अर्थ भी है, जो तपस्या के बिना ग्रहण नहीं किया जा सकता। व्यास-वाल्मिकी आदि ऋषि तपस्या के द्वारा ईश्वर कृपा से ही वेद का प्रकृत अर्थ जान पाये थे। उन्हें यह भी अनुभव था कि जगत् के कल्याण के लिए वेद के निगूढ़ अर्थ का प्रचार करने की आवश्यकता है। इसीलिए उन्होंने उसी अर्थ को सरलभाषा में और कथानक शैली के सहारे इतिहास एवं पुराणों के द्वारा प्रकट किया है "श्रुतिस्मृत्युदितो धर्मः पुराणे परिगीयते" —अर्थात् 'श्रुति एवं धर्मशास्त्र प्रतिपादित धर्म ही पुराणों में विस्तारपूर्वक कहा गया है।' इसीलिए सभी शास्त्रों में वेद का अर्थ इतिहास-पुराण की सहायता से समझने की सम्मति दी गयी है। यथा—"इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्" अर्थात् 'इतिहास-पुराण की सहायता से वेदों के अर्थ का विस्तार करना चाहिए।' यह कथन महाभारत का है। इतिहास-पुराण को बिना पढ़े जो व्यक्ति वेदों का अर्थ समझने की कोशिश करता है, उसके लिए वेद का भ्रमात्मक अर्थ ही ग्रहण करना संभव है। इसीलिए जो विद्वान् इतिहास-पुराण से अनभिज्ञ हैं, उन्हें वेदार्थ प्रतिपादन का अधिकार नहीं दिया गया है। महाभारत के अनुसार "विभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति"—अर्थात् 'इतिहास-पुराण से अनभिज्ञ व्यक्ति से वेद डरते हैं कि यह मुझपर प्रहार करेगा।' (अर्थात् यह मेरा निश्चित रूप से अनर्थ कर जन-समुदाय में उद्भ्रान्ति उत्पन्न करेगा।) उपरोक्त कारणों से ही वेद के पठन-पाठन का अधिकार साधारण लोगों को नहीं है, जबकि इतिहास-पुराण में सबका समान अधिकार है। इतिहास-पुराण हिन्दुओं की अमूल्य निधि है। इन अमूल्य निधियों का ही संक्षिप्त परिचय हम प्रस्तुत लेख में प्राप्त करेंगे।

इतिहास शब्द का अर्थ :

आजकल इतिहास शब्द का प्रयोग हम हिस्ट्री (History) के अर्थ में करते हैं, लेकिन संस्कृत-साहित्य में इसका प्रयोग 'परम्परा-प्राप्त कहानी' के अर्थ में हुआ है। अतएव 'जनश्रुति' अथवा 'किंवदन्ती' को ही संस्कृत में इतिहास कहा गया है। इतिहास की सारी कहानियाँ सत्य नहीं भी हो सकती है तथा इसमें साधारणतः काल-निर्देश नहीं रहता है, जबकि हिस्ट्री केवल वास्तविक घटनाओं का कालानुक्रमिक विवरण है। निम्नलिखित परिभाषाएँ न केवल इतिहास शब्द का अर्थ प्रकाश करती हैं, बल्कि इतिहास के उद्देश्यों को भी निर्देश करती हैं।

"इतिहेत्यव्ययम् पारम्पर्योपदेशाभिधायि।
तस्यासनम् आसः अवस्थानमेतेष्विति॥"

अर्थात् 'इतिह शब्द अव्यय है, इसका अर्थ होता है परम्पराप्राप्त कहानी; इन कहानियों का जो आस यानि आसन अथवा अवस्थान है, वही इतिहास है।' (इतिह+आस=इतिहास)।

"धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पुरावृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते।"

अर्थात् 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उपदेश करनेवाले प्राचीन घटनाओं से युक्त कहानियों का नाम इतिहास है।' इतिहास में प्राचीन काल की घटनाओं का उल्लेख रहने पर भी इसे हिस्ट्री नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इसमें केवल कुछ ही विगत घटनाओं का समावेश किया गया है तथा उनके काल-निर्देश पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। इतिहास की सबसे सहज एवं संक्षिप्त परिभाषा निम्नलिखित है—

"पूर्वानुचरितमितिहास :।"

अर्थात् 'पूर्व महा-पुरुषों की जीवन-कथाओं का विवरण ही इतिहास है।'

पुराण शब्द का अर्थ :

पुराण एक पारिभाषिक शब्द है जिसकी सरलतम परिभाषा निम्नलिखित हो सकती है— "पुरावृत्तम् पुराणम्"।

अर्थात् 'प्राचीन काल की घटनाओं का वृतान्त ही पुराण है।' इसमें प्राचीन काल की सभी महत्त्वपूर्ण घटनाओं का कालानुक्रमिक वर्णन पाये जाते हैं। इसीलिए पुराण को हम हिस्ट्री कह सकते हैं। अतएव अंग्रेजी 'हिस्ट्री' शब्द का संस्कृत प्रतिशब्द 'पुराण' है। निम्नलिखित परिभाषाओं में भी पुराण का यही अर्थ प्रतिपादित हुआ है—

"यस्मात् पुराह्यनतीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम्।" अर्थात् 'प्राचीन काल में यह जीवित था यानि प्राचीन काल में इस प्रकार की घटना घटी थी, इसीलिए इसका नाम पुराण है।'

"पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः।" अर्थात् 'विद्वानलोग पुराण-समूह को प्राचीन काल का इतिवृत्त समझते हैं।'

इतिहास पुराण की उत्पत्ति एवं क्रम-विकास :

अन्यान्य हिन्दु शास्त्रों की तरह इतिहास-पुराण का भी मूल उत्स वेद ही है। वेद के अन्तर्गत गोपथ ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, जैमिनीय ब्राह्मण, तैत्तिरीय आरण्यक, छान्दोग्य-उपनिषद्, बृहदारण्यक-उपनिषद् तथा अथर्ववेद आदि में इतिहास-पुराण का उल्लेख है। अथर्ववेद के अनुसार यज्ञ के उच्छिष्ट से वेद एवं पुराण की उत्पत्ति हुई तथा बृहदारण्यक-उपनिषद् के अनुसार परमात्मा के निःश्वास से चारों वेद सहित इतिहास-पुराण आदि का प्रादुर्भाव हुआ है। इससे यही पता चलता है कि इतिहास-पुराण की उत्पत्ति दिव्य है। निम्नलिखित श्लोक में तो पुराणों की उत्पत्ति वेद से भी पूर्व मानी गयी है।

"पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥"

अर्थात् 'ब्रह्माजी ने समस्त शास्त्रों में सर्वप्रथम पुराण का ही स्मरण किया तथा बाद में उनके श्रीमुख से वेद प्रकट हुए।' इससे इतिहास-पुराण की प्राचीनता ही प्रमाणित होती है।

पौरुषेय एवं अपौरुषेय भेद से इतिहास-पुराण को दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं – (१) श्रुत्यात्मक एवं (२) स्मृत्यात्मक। श्रुत्यात्मक इतिहास-पुराण वेदों के अंश-विशेष हैं तथा स्मृत्यात्मक इतिहास-पुराण ऋषि-मुनियों के द्वारा रचित हैं। वेदों में स्मृत्यात्मक इतिहास-पुराण का उल्लेख रहने पर भी इसके अस्तित्व का स्पष्ट प्रमाण सूत्रकाल में हम पाते हैं। छान्दोग्य-उपनिषद में इतिहास-पुराण को पंचम वेद कहा गया है। गौतमीय धर्मसूत्र एवं अश्वलायन धर्मसूत्र में वेद-वेदाङ्ग के साथ इतिहास-पुराण के स्वाध्याय का विधान है। गौतमीय धर्मसूत्र में लिखा है कि राजा को वेद-वेदाङ्ग तथा धर्मशास्त्र के साथ ही पुराण को भी प्रमाण मानना चाहिए। आपस्तम्बीय धर्मसूत्र में पुराणों से कुछ उद्धरण उद्धृत किये गये हैं। बहुत ही प्राचीन काल से प्रचलित चतुर्दश विद्याओं में भी पुराण का उल्लेख है।

"पुराणन्याय मीमांसाधर्मशास्त्राङ्ग मिश्रितः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य चतुर्दश॥"

अर्थात् 'पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, छः वेदाङ्ग, तथा चार वेद—धर्म के ये चतुर्दश विद्या-स्थान कहलाते हैं।'

श्रुत्यात्मक इतिहास-पुराण :

पहले ही कहा गया है कि श्रुत्यात्मक इतिहास-पुराण वेदों के अंश विशेष हैं। अब प्रश्न है कि वेद का कौन-सा अंश इतिहास तथा कौन भाग पुराण है। बृहदारण्यक-उपनिषद्भाष्य में भगवान शंकराचार्य ने "उर्वशी ह्यप्सराः इत्यादि ब्राह्मण भाग को इतिहास तथा "असद् वा इदमग्र आसीत्" इत्यादि सृष्टि-प्रक्रिया संबंधी वाक्यों को पुराण कहा है। ऐतरेय ब्राह्मण के उपक्रमभाष्य में महामति शाबर ने भी "देवासुराः संयत्ता आसन्" इत्यादि आख्यान भाग को इतिहास तथा "इदं वा अग्रे नैव किञ्चिदासीत्" इत्यादि सृष्टिप्रतिपादक वाक्य-समूह को पुराण कहा है। अतएव वेद का आख्यान भाग इतिहास है, जैसे उर्वशी पुरुरवा की प्रेमकथा, यम-यमी संवाद, देवासुर-संग्राम इत्यादि, तथा "विश्व-सृष्टेरितिहासः पुराणम् "अर्थात् वेद के जिस भाग में विश्व-सृष्टि का वर्णन हैं, वह भाग पुराण है। यास्काचार्य ने अपने निरुक्त ग्रन्थ में श्रुत्यात्मक इतिहास के कतिपय उपाख्यानों का उल्लेख किया है, जैसे देवापिशान्तनु का उपाख्यान इत्यादि। बृहद्देवता नामक ग्रन्थ में भी श्रुत्यात्मक इतिहास का उल्लेख है तथा वेद का कौन-कौन-सा अंश इतिहास है, इसका भी निर्देश कई स्थानों पर है।

छान्दोग्य-उपनिषद् भाष्य में आचार्य शंकर ने कहा है, "इतिहास पुराणयोरश्वमेधे पारिप्लवासु रात्रिषु कर्माङ्गत्वेन विनियोगः सिद्धः—अर्थात् 'इतिहास-पुराणों का अश्वमेध यज्ञ में पारिप्लवा रात्रियों में यज्ञ के अङ्ग के रूप से प्रयोग सिद्ध ही है।' अश्वमेध यज्ञ बहुत दिनों में समाप्त होता है। उसके अनुष्ठान में चुपचाप बैठे-बैठे यज्ञकर्ताओं को आलस्य आने लगता है। उसकी निवृत्ति के लिए श्रुति ने रात्रि के समय इतिहास पुराणादि श्रवण का विधान किया है। विविध उपाख्यानादि के समुदाय का नाम 'पारिप्लव' है; जिन रात्रियों में उनके श्रवण का विधान है, वे 'पारिप्लव रात्रियाँ' कहलाती हैं। अतएव श्रुत्यात्मक इतिहास-पुराण का प्रयोग यज्ञशाला तक ही सीमित था। लेकिन स्मृत्यात्मक इतिहास-पुराण यज्ञशाला की सीमाओं को पारकर जनसाधारण के जीवन-यज्ञ का अनिवार्य अङ्ग बन गया है।

स्मृत्यात्मक इतिहास-पुराण :

स्मृत्यात्मक इतिहास-पुराण का उल्लेख प्राचीन शास्त्रों में रहने के कारण इसकी प्राचीनता प्रमाणित होती है, लेकिन प्राचीन शास्त्रोल्लिखित इतिहास-पुराण अभी विद्यमान हैं कि नहीं इस विषय में सन्देह है। वाल्मिकीकृत रामायण तथा व्यासकृत महाभारत को ही अभी हम पौरुषेय इतिहास के रूप में पाते हैं तथा पौरुषेय पुराण के अन्तर्गत वर्तमान में उपलब्ध अष्टादश महापुराण तथा समसंख्यक उपपुराण आते हैं। अब से हम इतिहास एवं पुराण शब्दों का प्रयोग वर्तमान में उपलब्ध पौरुषेय इतिहास पुराण के अर्थ में ही करेंगे। सर्वप्रथम हम पुराणों की आलोचना करेंगे। फिर परवर्ती प्रबन्धों में रामायण एवं महाभारत का परिचय प्राप्त करेंगे।

अष्टादश पुराणों की रचना :

अष्टादश पुराणों की रचना के संबंध में निम्नलिखित तीन प्रमुख सिद्धांत हैं—(१) सभी पुराण महर्षि वेदव्यास के द्वारा संकलित है, (२) वेदव्यास ने केवल एक पुराण का संकलन किया था तथा उसके आधार पर बाकी पुराणों की रचना परवर्ती ऋषियों ने की है, (३) वेद व्यास ने पुराणों की रचना नहीं की है। पुराणों की रचना 'व्यास' पदवी वाले विभिन्न ऋषियों ने की है। इन तीनों मतों में प्रथम दो परम्परागत तथा तीसरा आधुनिक विद्वानों का मत है। यहाँ पर हम केवल परम्परागत मतों की ही चर्चा करेंगे।

१. वेदव्यास द्वारा पुराणों का संकलन :

हिन्दु शास्त्रकारों के मत में सृष्टि के आरम्भ में तपस्या के द्वारा ब्रह्माजी ने वेदों एवं पुराणों का ज्ञान प्राप्त किया। फिर सृष्टि-क्रम का विस्तार होने पर उन्होंने भृगु, अत्रि, मरीचि आदि अपने मानसपुत्रों के निकट इन वेदों एवं पुराणों को प्रकट किया। इसके बाद भृगु आदि ने अपने शिष्यों को इसकी शिक्षा दी। बाद में अन्य ऋषियों ने भी गुरु-शिष्य परम्परा से इनका ज्ञान प्राप्त किया। इसीलिए कहा गया है—"पुरा परम्परां वक्ति पुराणं तेनवै स्मृतम्"। परम्परा प्राप्त पुराणों का ही संकलन करके महर्षि वेदव्यास ने अष्टादश पुराणों की रचना की है। किसी-किसी के मत में ये अष्टादश पुराण पृथक् ग्रन्थ नहीं हैं, बल्कि व्यास द्वारा रचित एक ही पुराण-संहिता के अठारह प्रकरण अथवा अध्याय हैं। अपने मत के समर्थन में वे पुराणों के नियत-क्रम का उल्लेख करते हैं।

जिस तरह एक ही ग्रन्थ के विभिन्न अध्यायों का एक निश्चित क्रम होता है, उसी तरह अष्टादश पुराणों का एक नियत-क्रम है।

२. वेदव्यास द्वारा एकमात्र पुराण की रचना :

"आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभि: कल्पशुद्धिभि: ।
पुराणसंहिता चक्रे पुराणार्थविशारद: ।।"

अर्थात् 'पुराणार्थ विशारद वेदव्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि का अवलम्बन करके पुराण-संहिता की रचना की ।' उक्त आख्यान आदि का अर्थ निम्नलिखित श्लोक में दिया गया है—

"स्वयं दृष्टार्थकथनं प्राहुराख्यानकं बुधा: ।
श्रुतस्यार्थस्य कथनमुपाख्यानं प्रचक्षते ।।
गाथास्तु पारम्पर्येण पितृप्रभृति गीतय: ।
बूधैरुक्ता कल्पशुद्धि: श्राद्धकल्पादिनिर्णय: ।।"

अर्थात् 'अपनी आंखों से देखी हुई घटनाओं का वर्णन आख्यान, सुनी हुई बातों का विवरण उपाख्यान, पितृ-पितामहादियों से चली आयी गीतियों गाथा तथा श्राद्धविधि आदि का निर्णय कल्पशुद्धि कहलाता है ।' इससे पता चलता है कि व्यासदेव ने अपनी पुराण संहिता में परम्परा प्राप्त पुराणों के साथ-ही-साथ इतिहासों एवं स्वदृष्ट घटनाओं का भी सन्निवेश किया था । व्यासदेव ने रोमहर्षण सूत नामक अपने शिष्य को स्वरचित पुराण संहिता प्रदान की । रोमहर्षण ने इसका नाम रोमहर्षणिका रखा । रोमहर्षण के तीन प्रधान शिष्यों ने रोमहर्षणिका का अवलम्बन करके तीन और पुराण-संहिताओं की रचना की । परवर्ती काल में इसकी संख्या बढ़कर अठारह हो गयी अर्थात् बाकी चौदह पुराणों की रचना परवर्ती पुराणकारों ने की ।

पुराण के वक्ता :

"सूता: पौराणिका: प्रोक्ता:"—अर्थात् सूतगण पुराणों के वक्ता हैं । इतिहास-पुराण का संकलन एवं प्रवचन ही इस सम्प्रदाय का प्रधान कार्य था । इसीलिए कहा गया है—

"स्वधर्म एष सूतस्य सद्भिर्दृष्ट: पुरातनै: ।
देवतानामृषीणाञ्च राज्ञा: चामिततेजसाम् ।।
वंशानां धारणं कार्यं श्रुतानाञ्च महात्मनाम् ।"

अर्थात् देवताओं, ऋषिओं एवं अमिततेजशाली राजाओं तथा अन्य प्रसिद्ध महात्माओं के वंश-वृतान्तों की जानकारी रखना ही सूत का स्वधर्म प्राचीन सत्पुरुषों द्वारा निर्दिष्ट हुआ है ।' इतिहास-पुराण के संबंध में सूतों का ऐसा अधिकार रहने पर भी वेद में उनका कोई अधिकार नहीं था । सूतों की परम्परा लोमहर्षण सूत से ही चली आ रही है । सूतगण सत्यपरायण होते थे तथा सुनी हुई अथवा देखी हुई घटनाओं का वर्णन ज्यों-का-त्यों करते थे । प्राचीन काल में राजा एवं ऋषिगण अक्सर यज्ञ का अनुष्ठान किया करते थे । इन यज्ञों में विभिन्न राज्यों के राजाओं, विशिष्ट व्यक्तियों एवं ऋषि-मुनियों को आमन्त्रित किया जाता था । सूतगण इस अवसर पर उन्हें इतिहास-पुराण सुनाया करते थे ।

मुट्ठी रुपया देकर बोले : 'लो सोना का बाला बनवा दो।' माँ ठाकुरानी हॉगला पाक का बाला पसन्द करती थी।' भक्त तब अवाक होकर बोले : 'एक अचिन्तनीय उपाय से सब योग। योग हो गया।' जो लोग पहले बहुत सा रुपिया मांग रहे थे वही लोग आकर बोले, "हम लोग केवल लड़की चाहते हैं। और कुछ नहीं चाहते हैं।' इस प्रकार महापुरुष जी का जीवन कल्याण व्रत चल रहा था। और भी कितनी प्रकार की घटना उस समय देखी जाती थी। वे मानो उस समय 'करुणा द्रव्य गंगा' हो गए थे।

महापुरुष जी ठाकुर के निर्देश लेकर ही सब कार्य करते थे। हम लोगों ने विश्वस्त सूत्रों से सुना हैं कि, यहां तक कि दीक्षा आदि के सम्बन्ध में वे ध्यान में जो मन्त्र पाते वही शिष्य को देते थे, स्वप्न में जिनको दीक्षा देते वह भी ठाकुर के निर्देशानुसार।

—: महापुरुषजी का नित्य ठाकुर दर्शन लाभ :—

काशी में पुराने लोगों के मुख से सुना हूं कि १९०२ ई० में काशी अद्वैत आश्रम की स्थापना के वाद वे प्रतिदिन ध्यान में ठाकुरजी का दर्शन पाते। किसी दिन उसका व्यतिक्रम होने से वे सन्ध्या के वाद आश्रम में जो ब्रह्मचारी कार्यकर्ता था उससे दुखित होकर बोले ! 'चन्द्र आज दिन बेकार चला गया, अभी भी ठाकुर का दर्शन नहीं मिला।' बाद में हो सकता है रात्रि में दर्शन पाते। १९१६ ई0 में राजा महाराज के निर्देश से जब बेलूड़ मठ में स्वामी प्रेमानन्द के सहकारी के रूप में ठाकुर सेवा में व्रती हुए, हमलोगों ने पुराने लोगों के मुख से सुना है, तब उनके नित्य मंगल आरती के बाद मन्दिर जाने पर ठाकुर साथ ही साथ हाथ बढ़ा कर चिबुक छू कर उनका आदर करते। उसका व्यतिक्रम विशेष विशेष कारण से ही होता। सभी अलौकिक कार्य।

श्री रामकृष्ण संघ के एक आचार्य पाद के प्रवीण सन्यासी ने कहा था: 'मैंने तो १९०२ ई० से महापुरुषजी का संग किया है। उसी काशी अद्वैताश्रम में जब वे ध्यान-भजन लेकर कठोर तपश्चर्या करते, तभी से मैं उनका विशेष स्नेह पात्र था। उन्होंने ही मुझे साधु बनाया। उनकी दया की बात और क्या कहूं! साधु होने के बाद उनके साथ और घनिष्ठ भाव से मिला हूं। किन्तु अभी जो देखता हूं, प्रेसीडेन्ट होने के वाद मानो वे अन्य मनुष्य हो गए हैं। ठाकुर की विशेष शक्ति उनके भीतर से अभी खेल रही है। उन्होंने सारा जीवन तपस्या करके जो शक्ति अर्जित की हैं अब उसका विकास हो रहा है। वे इतने शक्तिशाली हुए हैं कि,अब उनके पास जाने में हमलोगों को ही भय होता है। वे भूत, भविष्य, वर्तमान सब देख सक रहे हैं। जिसको जो चाहिए सब दे सक रहे हैं, दृष्टि के द्वारा मनुष्य का मन मोड़ सकते हैं। जिसको चाहे आकर्षण कर सकते हैं— यह सब शक्ति मानो उनके मुट्ठी के भीतर है।'

चार पांच या सात आठ लोगों की दीक्षा रोज ही होने लगी। वे प्रातःकाल ठाकुर घर से आकर तमाखू पीते पीते साधू-भक्तों के साथ काम-काज की बातचीत करते। किसी किसी दिन धर्म-प्रसंग करते, बाद में थोड़ा प्रसाद मुख में देकर थोड़ा पानी पीते। कभी कभी कमर थोड़ा लम्बा कर लेते अर्थात थोड़ा सोते। दरवाजा बन्द कर मैं शरीर-हाथ-पैर और कमर थोड़ा दबा देता। आधे घन्टे के बाद वे उठकर दीक्षा-प्रार्थियों की खोज लेते एवं सभी को ठाकुर घर के वरान्डे में अपेक्षा करने के लिए कहते। साथ-ही साथ पुजारी को भी खबर भेजा जाता। पुजारी-महाराज नित्य की पूजा पूरी करके, महापुरुषजी की पूजा का आयोजन तैयार करके समाचार देते। वे कपड़ा बदल कर गंगा जल से हाथ मुख धोकर मन्दिर जाने के

लिए प्रस्तुत होकर अपेक्षा करते। मैं उनको छत के ऊपर से ठाकुर घर ले जाता एवं उनके मन्दिर में प्रवेश करने पर दरवाजा बन्द कर चला आता। पुजारी दीक्षादिकी व्यवस्था करता। वे जितने दिन मन्दिर जा सकते थे उतने दिन स्वयं ठाकुर पूजा करके प्रत्येक दीक्षा प्रार्थी से ठाकुर की पादुका मे अंजलि दिलाकर मन्त्र देते। दीक्षार्थिओं की संख्यानुसार दीक्षा देने में एक घन्टा से डेढ़ घन्टा लग जाता था। दीक्षा के बाद जप-ध्यान का उपदेश देकर प्रत्येक को मन्दिर के बरान्डे में बैठ कर थोड़ी देर जप करने के लिए कहते। दीक्षा को प्रणामी और फल मिष्ठान्न आदि, कपड़ा-धोती कुछ भी नहीं लेते थे। वह सब साथ ही साथ मठ-आफिस या भंडार में जमा कर दिया जाता। वे साफ-साफ कहते : 'मैं तो दीक्षा देता नहीं हूं ! वे ही दीक्षा देते हैं, वे ही भक्तों के अन्तर में पेरणा देकर यहाँ ले आते हैं, और वे ही मेरे अन्तर में बैठ कर (मन्त्रोच्चारण करके) मन्त्र देते हैं। मैं यन्त्र मात्र हू। वे ही गुरु हैं। गुरु दक्षिणा उनकी सेवा में ही लगेगा।' विशेष विशेष समय के अतिरिक्त वे भक्तों का नाम-धाम भी नहीं पूछते थे। स्वामी के अनुमति के सिवाय वे किसी विवाहित स्त्री को दीक्षा नहीं देते थे। अवश्य ही जिन्होंने पहले से ही बातचीत करके उनकी अनुमति से दीक्षा लेती, उनकी बात अलग है एवं उनकी संख्या खूब कम। महापुरुषजी के दीक्षा देना आरम्भ करने के तीन-चार वर्ष इसी प्रकार चला था। बेलूड मठ के अतिरिक्त अन्यत्र जब वे दीक्षा देते तब अवश्य उनके साथ पहले दीक्षा के सम्बन्ध में बातचीत होती अथवा आश्रमाध्यक्ष दीक्षा प्रार्थी भक्तों को ले आकर दीक्षा की बात करते। बेलूड मठ के बाहर जब उन्होंने दीक्षा दी है तब जिस आश्रम में दीक्षा हुई, गुरु दक्षिणा वे उसी आश्रम को देते एवं साथ ही साथ भक्तों के साथ योगायोग रखने का दायित्व भी उसी आश्रम के ऊपर दिया जाता।

(क्रमश:)

स्वामी विवेकानन्द के प्रति

श्री गोपाल प्र० सिंह
मुजफ्फरपुर (बिहार)

'सौंप चले सर्वस्व जगत को, —करुणामय संन्यासी !
तरूण निरन्तन, अमृत पुत्र हे ! ज्योति-पुरुष अविनासी।
लेकर चेतन गंध प्रवाहित होता मलय पवन है,
तेरे महागान से गुंजित धरती और गगन है।
शक्ति पूत हे ! मुक्ति दूत ! मानव विराट ! युग-जेता !
भारत माता के सपूत, जन-गण के स्वप्न सुनेता !
ललित अलंकृत, उर्ध्व घोष, वीणा के झंकृत तार,
धरती के सौभाग्य सुफल, अम्वर की करूण पुकार।
जगमग भाल विशाल, सौम्य मुख, सद्य: सरसिज लोचन,
निर्विराम निबंध पथी, दलितों के त्रास-विमोचन।
सप्त भुवन सम्राट, करे क्या अर्पित जगत अकिंचन,
अश्रु-कणों से अर्घ्य और बहु श्रद्धा-सुमन समर्पण।
गौरव गिरि उत्तुंग, अकम्पित दीप-शिखा निर्भय हे !
परम प्रकाशित देव, सगुण-साकार जयति, जय जय हे।'

समाचार एवं सूचनाएं

रामकृष्ण मिशन की ८६ वीं वार्षिक बैठक—बेलुड़ मठ, रामकृष्ण मिशन की ८६ वीं वार्षिक बैठक बेलुड़ मठ में रविवार, ३१ दिसम्बर १९९५ को सम्पन्न हुई। पूजनीय स्वामी गहनानन्द जी, परम उपाध्यक्ष, रामकृष्ण मिशन के कार्यवाही की अध्यक्षता की। परम पूजनीय श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज, परमाध्यक्ष, रामकृष्ण मिशन बहुत थोड़ी देर के लिए बैठक में उपस्थित थे। उन्होंने अत्यन्त संक्षिप्त आशीर्वादात्मक व्याख्यान दिया। प्रबन्ध समिति के १९९४-९५ के प्रतिवेदन की रूपरेखा सदस्यों के समक्ष प्रस्तुत की गयी। इस प्रतिवेदन में रामकृष्ण मिशन के क्रियाकलापों के सांख्यिकीय आंकड़े दिये गये हैं। अतिरिक्त सूचना के रूप में रामकृष्ण मठ के क्रियाकलापों की संक्षिप्त रूपरेखा भी प्रतिवेदन में दी गयी है।

शताब्दी समारोह—स्वामी विवेकानन्द की शिकागो धर्मसभा में सहभागिता-शताब्दी का समापन समारोह भारत और विदेशों में भव्यतापूर्वक मनाया गया। समारोहों में लोगों ने सहज और सशक्त रूप से भाग लिया। इस सन्दर्भ में धर्म संसदों, जन सभाओं, संवादगोष्ठियों, अधिवेशनों, छात्र-प्रतियोगिताओं आदि के आयोजन हुए। केन्द्रीय समन्वय समिति ने बेलुड़ मठ में सर्वधर्म सम्मेलन, कलकत्ते के नेताजी इनडूर स्टेडियम में एक विचार गोष्ठी तथा रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम में एक विराट युवा सम्मेलन का आयोजन किया था जिनमें हजारों व्यक्तियों ने भाग लिया।

अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित वेदान्त समितियों में सर्वप्रथम स्थापित यू.के. की वेदान्त सोसाइटी का भी यह शताब्दी वर्ष था। इस सोसाइटी ने दोनों शताब्दियों को समुचित एवं सम्मोहक रूप से आयोजित किया। इस अवसर पर आयोजित विश्वधर्म सम्मेलन में संसार भर से आये हुए १५०० प्रतिनिधियों ने भाग लिया। स्वामी विवेकानन्द के जीवन पर आधारित 'अराइज, अवेक (उठो, जागो) नामक एक चार अंकों के नाटक का भी मंचन हुआ। इसके अतिरिक्त स्वामी विवेकानन्द के जीवन की प्रमुख घटनाओं को उजागर करनेवाले एक शताब्दी संगीत-समारोह भी आयोजित किया गया जिसमें ७५ संगीतकारों ने भाग लिया।

उपर्युक्त सन्दर्भ में रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, बृन्दावन ने घोषणा की कि केबिनस्थ रोगियों को छोड़कर समस्त भीतरी और बाहरी रोगियों की समस्त सेवाएं निःशुल्क की जाएंगी।

पूजनीय स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज—रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के परम उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज ४ से १२ मार्च, १९९६ तक बेलुड़ मठ काशीपुर और उद्बोधन कार्यालय (कलकत्ता) में रहेंगे जहाँ वे दीक्षा भी देंगे। वे ३ मई १९९६ को भुवनेश्वर (उड़ीसा) में श्रीरामकृष्ण की प्रतिमा का अनावरण भी करेंगे।

पूजनीय स्वामी गहनानन्दजी महाराज—रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के परम उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गहनानन्दजी महाराज रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा में ९ से ११ अप्रैल, ९६ तक रहेंगे और १० अप्रैल को दीक्षा देने की कृपा भी करेंगे। तीनों दिन वे धर्म सभा को भी सम्बोधित करेंगे। पूज्य महाराज ६ से ८ अप्रैल ९६ तक रामकृष्ण विवेकानन्द सेवाश्रम, मुजफ्फरपुर में रहेंगे और ८ अप्रैल ९६ को दीक्षा देने की कृपा करेंगे।

संसार में जब आया है तो एक स्मृति छोड़कर जा, वरना पेड़-पत्थर भी तो पैदा तथा नष्ट होते रहते हैं। —स्वामी विवेकानन्द

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.-१४-८३

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सईदपुर, पटना-४ में मुद्रित।